भारत-परिचय-माला

लेखक

मन्मथनाथ गुप्त

संपादक

विश्वमित्र शर्मा

सदर बाजार, दिल्ली-६.

संपादकीय

भारत-परिचय-माला की इन छोटी पुस्तकों का ध्येय देश के उन अलग-अलग अंगों का, अथवा यों कहिए उन हिस्सों का ज्ञान करवाना है---जिनसे मिल कर भारत बना है---हमारा देश बना है । और हमने इन पुस्तकों में जिस ढंग से जानकारी देन का यत्न किया है---वह न भूगोल में मिलती है, और अकेला इतिहास भी कुछ धुँधला-सा चित्र बनाता है---यह जानकारी दर-असल वहाँ के लोगों की असली जानकारी है---जिसे जानने की आज जरूरत है। इन पुस्तिकाओं का ध्येय केवल वहाँ की बातें बतला देना मात्र ही नहीं---वरन् एक दूसरे की जानकारी देकर आपसी सद्भावना बढ़ाना भी है। सरकार इस दिशा में---यानी आपसी सद्भावना वृद्धि के लिए काफी-कुछ कर रही है । सरकार कर रही है, इसी लिए हमें कुछ नहीं करना---ऐसा सोचना अपने को ही हानि पहुँचना है---अतः इस दिशा में यह हमारा अपना प्रयास है---और हम इनके द्वारा आपसी दूरी को कम करना चाहते हैं । बंगाल-पंजाब से दूर नहीं, यानी कोई भाग दूसरे भाग से दूर नहीं---दूरी है केवल समझ की---दूसरे को दूसरा समझने की ।

---विश्वमित्र शर्मा

भूमिका

अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र और मगध में जा कर कभी आर्यों को प्रायश्चित्त करना पड़ता था। यह उस समय की बात होगी जब आर्यों की सभ्यता इन स्थानों में फैली नहीं थी। पर इस समय हमारी जो सभ्यता है, उस में आर्यों के साथ-साथ अनार्यों का भी और उस के बाद आने वाले लोगों का बहुत बड़ा दान है। यह बातें केवल बंगाल पर ही लागू नहीं हैं, बल्कि सारे भारत पर लागू हैं।

यह पुस्तिका बंगाल के इतिहास और साहित्य की भूमिका मात्र है। अंग्रेजों के आने के पहले बंगाल के कुछ ही नाम जैसे—जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, चण्डीदास आदि के नाम बंगाल के बाहर फैले थे, पर अंग्रेजों के आने के बाद बंगाल ने भारत को एक के बाद एक बहुत से महापुरुष दिए। यहाँ तक कि गोखले ने एक बार यहाँ तक कह डाला था कि आज बंगाल जो कुछ सोचता है—कल सारा भारत वही सोचता है। बंगाल की अकेले उन्नति करने का वह युग नहीं रहा यानी अब सब राज्य आगे बढ़ रहे हैं। यों तो क्रान्तिकारी आन्दोलन भी सारे भारत में फैला, पर वह आन्दोलन बंगाल की संस्कृति, बल्कि सारी चेतना में जिस प्रकार घर कर गया, वैसा और कहीं नहीं हुआ। इसके अलावा बंगाल के साहित्यकार और कलाकार आज भी भारत में अद्वितीय हैं। आशा है इस पुस्तक से बंगाल के सम्बन्ध में पाठक के मन में और जिज्ञासा उत्पन्न होगी।

दिल्ली
१० मई, १९५८

—मन्मथनाथ गुप्त

विषय सूची
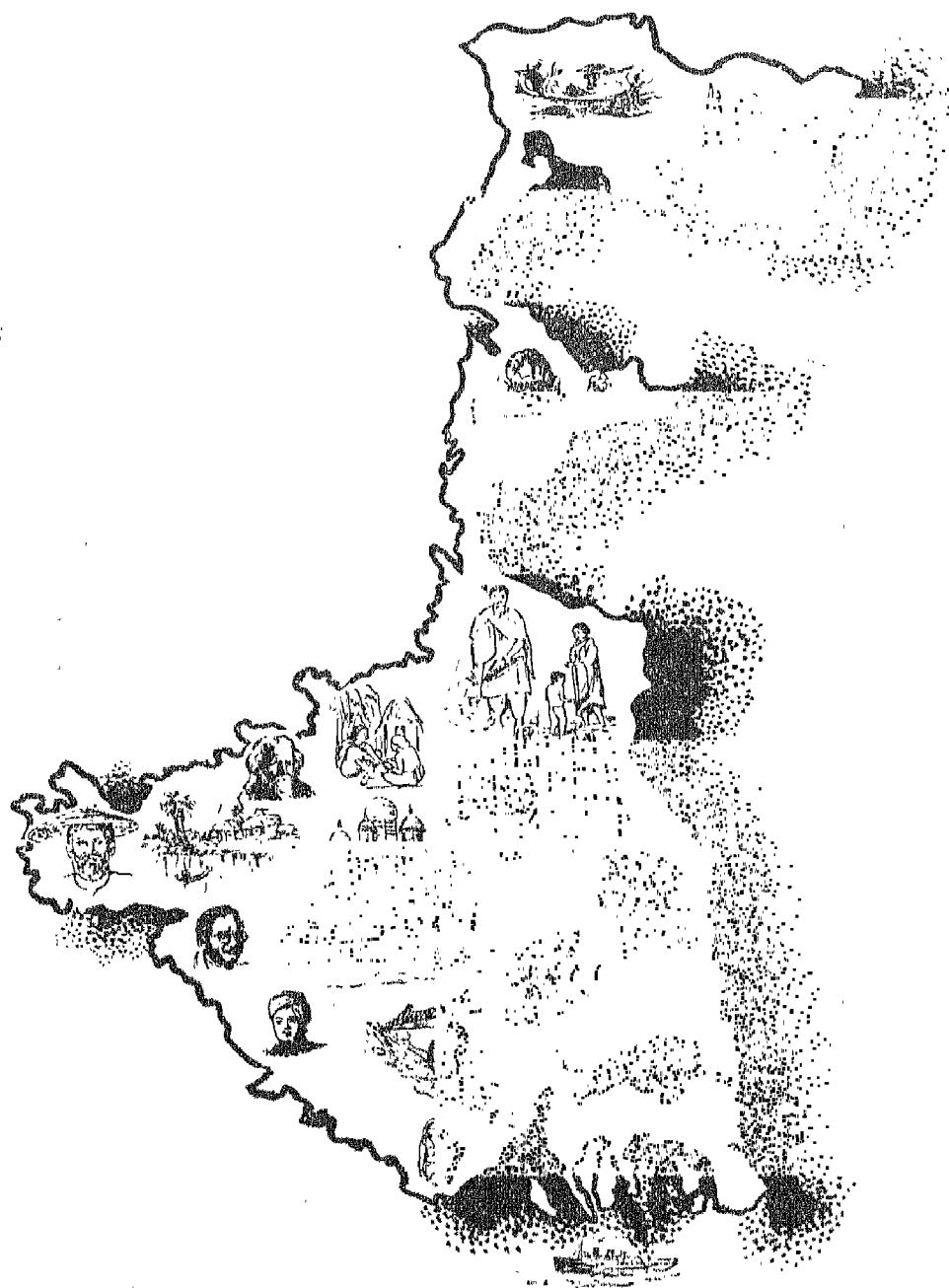
आमार सोनार बांगला

बंगाल को वंग अथवा बंगाल कहते हैं। यों बंगाली अपने प्रांत को वंग या बाँगला देश कहते हैं। यहाँ की भाषा का नाम बंगला भाषा है, पर बंगाली अपनी भाषा को बाँगला कहते हैं। इस शब्द के कई हिज्जे बंगला में प्रचलित हैं——बांला, बाङ्ला और बाङ्गला।

कभी बंगाल आर्य देश से बाहर था। उन दिनों यह समझा जाता था कि अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र और मगध में जाने से लोगों का धर्म भ्रष्ट हो जाएगा, अर्थात् जो वहाँ चला जाता था बिरादरी से उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाता था, वह अछूत माना जाता था। इस का केवल अर्थ इतना ही है कि उन दिनों आर्य सभ्यता यहाँ तक न पहुँच पाई थी। जो लोग इन स्थानों में जाते थे, उनके लिए यह खतरा था कि वे कहीं अनार्य सभ्यता में डूब न जाएँ।

इस समय जो बंगाल राज्य है, उसके पश्चिम में बिहार तथा उड़ीसा हैं। उत्तर में हिमालय, पूर्व में असम तथा पूर्वी पाकिस्तान और दक्षिण में बंगाल की खाड़ी है।

बंगाल की भूमि बिलकुल समतल है, केवल उत्तर में जो दार्जिलिंग का इलाका है, वही पहाड़ी भाग है। दक्षिण में कुछ भूमि दलदलनुमा है। यहाँ वर्षा अच्छी-खासी होती है। जमीन उपजाऊ है। उत्तर के दार्जिलिंग इलाके में जहाँ-तहाँ काफी घने जंगल भी हैं, पर बंगाल का सब से घना जंगल दक्षिण में है, जो सुन्दरबन कहलाता है। जहाँ अभी सभ्यता का प्रकाश पहुंचा ही नहीं है। यदि सुन्दरबन के इलाके की तरक्की

की जाय तो यह एक बहुत अच्छा और उपजाऊ इलाका बन सकता है। पर इसके लिए करोड़ों रुपए की जरूरत है। यहाँ न केवल इमारती और ईंधन वाली लकड़ी बहुत मिलती है, बल्कि और भी काम की जंगली चीजें और जड़ी-बूटियां पाई जाती हैं। ध्यान देने पर इस इलाके में सभी कुछ पैदा हो सकेगा।

बंगाल के लोग साँवले होते हैं—पर यहाँ बहुत काले से लेकर बहुत गोरे तक, चपटी नाक वालों से लेकर आर्यों की तरह सुन्दर नाक वाले लोग भी मिल सकते हैं। खानदानी लोग उत्तर भारत के अन्य राज्यों की तरह गोरे—चिट्टे और सुन्दर डील-डौल वाले भी हैं।

यहाँ का मुख्य भोजन चावल है—जिसे तरह-तरह से खाया जाता है। साधारणतः चावल का भात बनाया जाता है। पर लाई, खील और चूड़ा आदि अनेक रूपों में भी उस का प्रयोग होता है। चावल पीस कर कई तरह के पूली-पीठे यानी अनेक पकवान भी बनाए जाते हैं। इन पकवानों में अक्सर चावल के साथ नारियल भी मिलाते हैं, जो बंगाल की मुख्य उपजों में से है। चावल की पीठी को घोल कर दुर्गापूजा तथा अन्य मौकों पर फर्श पर चित्रकारी भी की जाती है, जिसे 'आल्पना' कहते हैं। आल्पना का एक लोक कला के रूप में विकास हुआ है। देहात की इस पुरानी कला की ओर अब अच्छे कलाकारों का भी ध्यान गया है और यह कला आज भारत के दूसरे कई राज्यों में भी मशहूर हुई है। चौकपूरना आदि यही चीजें हैं। पहले यह कला औरतों तक ही सीमित थी, पर आजकल कुछ कलाकार पुरुषों ने भी इस में कमाल हासिल किया है।

यहाँ पुरुषों का प्रधान पहनावा धोती है, जिसे वे एक विशेष प्रकार से पहनते हैं। पीछे लांग होती है और सामने धोती के दूसरे छोर के कुछ हिस्से को चुनिया कर लटका लेते हैं। कुछ लोग उसके एक सिरे को टांग लेते हैं, जिसे कोचो कहते हैं। यह बंगाली बाबुओं की विशेषता समझी जाती है।

आमतौर से लोग बंगालियों को ढीली-ढाली धोती का मजाक कर देते हैं। पर इसे बंगाली लोग नहीं मानते। लटकते हुए कोचा को लांग के साथ ले जाकर धोती इस प्रकार से बाँधी जा सकती है जिस से वह बिल्कुल ढीली-ढाली न रहे। कोई जमाना था कि लठैत और सिपाही लोग इसी तरह की धोती बाँधते थे। आज भी राजस्थान के मेहनती और साहूकार—दोनों—बहुत कुछ इसी तरह की धोती बाँधते हैं। उस में थोड़ा अन्तर केवल यही रहता है कि यह लोग दोनों टाँगों के नीचे से लाँग लगाते हैं।

बंगाली महिलाओं का प्रधान पहनावा साड़ी है, जिसे वे कई तरह से बाँधती है। बंगाल के मुर्शिदाबाद में रेशम का कारोबार है, पर इन से भी कई मामलों में जनप्रिय जुलाहों की बनाई हुई साड़ियाँ हैं। कभी बंगाल का मलमल सारी दुनिया में प्रसिद्ध था, और गृहलक्ष्मियों के कारण बंगाल के जुलाहे बराबर जीवित रहे हैं। अब घरेलू उद्योगों पर जोर देने के कारण उनकी और भी इज्जत हो रही है।

बंगाल की लोक-कला आल्पना का एक सुन्दर नमूना : आल्पना अनेक रूपों में भारत के अन्य राज्यों में भी प्रसिद्ध है। अनेक शुभ-मांगलिक कार्यों में फर्श, घड़े और स्तंभों आदि पर महिलाएँ रंगों, हल्दी, आटे अथवा चावल के चूर्ण से इसका निर्माण करती हैं।

चावल के बाद बंगाल का मुख्य भोजन मछली कहा जाय तो कोई ज्यादती न होगी। मछलियों की सैकड़ों किस्में होती हैं और उन्हें खाया-पकाया भी कई तरह जाता है। इस प्रकार से इसकी अपनी ही एक कला बन गई है। हो भी क्यों नहीं—क्योंकि बंगालियों को पंजाबियों और उत्तर-प्रदेश के कुछ लोगों की तरह अधिक दूध-घी नहीं मिल पाता, इसलिए मछली ने उसका स्थान ले रखा है। देहात की सम्पत्ति में घर और खेत के अलावा मछलियों से भरे पोखरे भी होते हैं। इससे बंगालियों के लिए मछलियों की महत्ता का पता चल सकता है।

बंगाल भारत के सब से अधिक घनी आबादी वाले इलाकों में है। यहाँ प्रति वर्गमील ८०६ व्यक्ति रहते हैं। कलकत्ता में प्रति वर्ग मील ७८६०० लोग रहते हैं। बंगाल की आबादी यों ही बहुत बढ़ी हुई है, तिस पर पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू शरणार्थियों की भरमार है।

बंगाल दो डिवीजनों में बँटा है—वर्धमान और प्रेसीडेंसी। वर्धमान डिवीजन में ये जिले आते हैं—बाँकुड़ा, वीरभूम, वर्धमान, हुगली, हावड़ा, मेदिनीपुर, पुरुलिया। प्रेसीडेंसी डिवीजन में कलकत्ता, कूचबिहार, दार्जिलिंग, पश्चिम दीनाजपुर, जलपाईगुड़ी मालदा, मुर्शिदाबाद, नदिया और चौबीस परगना आते हैं। अब प्रेसीडेन्सी डिवीजन को

दो भागों में बांटने की योजना है।

इस राज्य में हिन्दुओं का अनुपात ७८·४४% है, मुसलमानों की संख्या १९·८५% है। सभी को समान रूप से सब नागरिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। राज्य की प्रधान भाषा बंगला है। उसे बोलने वालों का अनुपात ८५% है। इस राज्य में शिक्षितों का अनुपात लगभग २५% है। पुरुषों में ३४·७ और स्त्रियों में १२·७ साक्षर हैं। कलकत्ता में ५३·१२ साक्षर हैं।

बंगाल में इस समय ७ नगर ऐसे हैं जिनकी आबादी १ लाख से ऊपर है। उनके नाम हैं—कलकत्ता, हावड़ा, टालीगंज, भाटपाड़ा, खड़गपुर, गार्डनरीच, बेहाला। दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी में नेपाली बोलने वालों की संख्या भी काफी है। गर्मियों में रहने के लिए दार्जिलिंग बहुत आदर्श स्थान है। इसके सौंदर्य की तुलना काश्मीर से की जाती है।

उद्योग-धन्धे :

बंगाल किसी जमाने में उद्योग धन्धों में बहुत आगे बढ़ा हुआ था। अंग्रेजों के आने से पहले ढाका और उसके आस-पास के इलाके की मलमल बहुत ही मशहूर थी। हौदे समेत खड़े हाथी को ढांप देने वाला मलमल का थान उंगली में पहनी जाने वाली अंगूठी में से आरपार हो जाता था। यही कारण था कि किसी जमाने में यहाँ की मलमल की विलायत में भी धूम थी। ऐसी हालत में बंगाली यदि उसे सोने का बंगाल कहें तो ज्यादती क्या है।

अंग्रेज गुमाश्तों ने यहाँ आकर बुनकरों से सस्ते दामों में मलमल लेने के लिए उन पर बहुत जुल्म किए—इससे तंग आकर जुलाहों ने अपने अंगूठे ही कटवा लिए थे,

पर आज भी बंगाल दस्तकारी और दूसरे धन्धों में काफी आगे है। और अब तो आजादी के बाद तरक्की की बहुत गुँजाइश है।

यद्यपि यह राज्य छोटा है पर भारत के बड़े-बड़े और मुख्य कारखाने पश्चिम-बंगाल में हैं। सारे भारत में जितना कोयला पैदा होता है, उसमें से एक चौथाई बंगाल में निकलता है। यहाँ ९० के लगभग पटसन की मिलें हैं। जिनमें तीन लाख आदमी काम करते हैं। इनमें अड़तालीस करोड़ रुपए की पूँजी लगी हुई है। कलकत्ता के १६ मील के अन्दर सैकड़ों मिलें हैं, जिन में ३२ तो कपास की मिलें हैं। बंगाल में कागज़ भी सबसे ज्यादा बनता है। दुर्गापुर में इस्पात की जो मिल चालू होने वाली है उससे बंगाल उद्योग-धन्धों में और आगे बढ़ जाएगा। दुर्गापुर में पहले ही से और भी धन्धे चालू थे।

बंगाल में उद्योग-धन्धे प्राकृतिक कारणों से बड़े होने पर भी बंगाल अभी तक कृषि प्रधान राज्य ही है। यहाँ के अधिकांश लोग अब भी खेती पर निर्भर करते हैं। चावल उत्पादन में भारत में बंगाल का नम्बर तीसरा, चाय में दूसरा और पटसन में पहला है। इसके अलावा बंगाल में तम्बाकू, कपास, मक्का, चना, जौ तथा कई प्रकार के तिलहन पैदा होते हैं। यह स्मरण रहे कि खेती होने योग्य इलाके में से ८८% में चावल ही पैदा होता है। चाय के बाग १७०००० एकड़ में फैले हुए हैं। मुख्यतः जलपाईगुड़ी और दार्जिलिंग में ही चाय उत्पन्न होती है।

बंगाल में कुल मिला कर ५२५६ वर्ग मील जंगल है। सुन्दरबन का जंगल प्रसिद्ध है। उसके अलावा दार्जिलिंग, कूचबिहार, मेदिनीपुर, नदिया, पश्चिम दीनाजपुर, माल्दा, वीरभूम, वर्धमान, हुगली, बाँकुड़ा और मुर्शिदाबाद में भी कुछ जंगल हैं।

पंचवर्षीय योजना के अनुसार बंगाल में दो नदी-घाटी योजनाएँ चालू हैं। एक तो मयूराक्षी योजना है। मयूराक्षी नदी बिहार के संथाल परगना से निकल कर १५० मील चल कर भागीरथी में मिल जाती है। संथाल परगना के मसन जोर नामक स्थान में यह नदी एक पतली घाटी से होकर बहती है और वहीं बाँध बनाया गया है। इस बाँध को सिंचाई, बिजली पैदा करने तथा बाढ़ रोकने
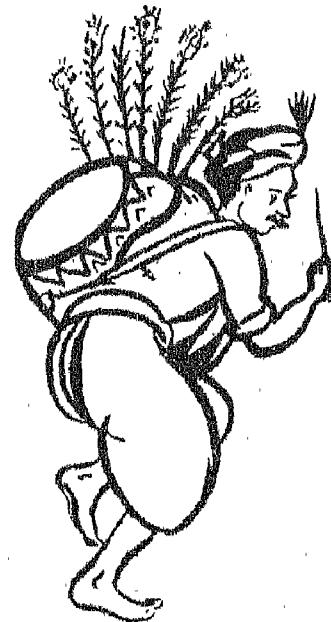
के लिए उपयोगी समझा गया है। दूसरी योजना दामोदर घाटी योजना कहलाती है, जो बिहार और बंगाल दोनों को लाभ पहुँचाने के लिए है। इससे भी बिजली पैदा होगी और सिंचाई में भी लाभ रहेगा।

बंगाल में लगभग पैंतालीस करोड़ रुपए के कुटीर शिल्प के द्रव्य उत्पन्न होते हैं। बंगाल के कुटीर शिल्पों में सब से महत्वपूर्ण धन्धा हाथ करघे का है। अब भी बंगाल में रेशम की तुलना में करघों पर बने हुए सूती कपड़े उत्तम समझे जाते हैं। उस के बाद ही रेशम का धन्धा है। बाकी कई घरेलू धन्धे भी बंगाल में पाए जाते हैं। जैसे कपड़े का काम, पीतल और कांसे का काम, मिट्टी के बरतन, तेल और साबुन बनाने आदि के धन्धे तो हैं ही। पंचवर्षीय योजना के अनुसार अधिक से अधिक लोगों को काम दिलाने तथा बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए घरेलू धन्धों को बढ़ाया जा रहा है। अब जनता में घरेलू धन्धों के प्रचार के लिए वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक उपाय काम में लाए जा रहे हैं।

बंगाल में २४६२ मील पक्की सड़क और २६५२ मील कच्ची सड़कें हैं। रेल की पद्धति बहुत उन्नत है। बसों द्वारा परिवहन भी काफी उन्नत अवस्था में कहा जा सकता है। कलकत्ता में ट्रामों का व्यवस्था अच्छी है।

राज्य का क्षेत्रफल ३३९५८ वर्ग मील है। कलकत्ता इस राज्य की राजधानी है, न केवल यह राजधानी है बल्कि— सांस्कृतिक तथा साहित्यिक केन्द्र भी है। दूसरे शब्दों में कलकत्ता ही बहुत कुछ बंगाल है।

इस समय बंगाल दो भागों में बंटा हुआ है। पश्चिमी-बंगाल भारत में है, और पूर्वी-बंगाल पाकिस्तान में। अभी १९४७ तक बंगाल एक था। पर जब देश का विभाजन हुआ तो बंगाल के दो हिस्से हो गए।

प्राचीन बंगाल

बिलकुल प्रागैतिहासिक युग की बात छोड़ भी दी जाय तो बंगाल प्राचीन काल में भी—यह स्मरण रहे कि बंगाल से मतलब इस समय के बंगाल से है—कई भागों में बंटा हुआ था। बंगाल तीन नदियों, बल्कि एक नदी की दो शाखाओं यानी पद्मा, भागीरथी तथा ब्रह्मपुत्र से चार भागों में बंटा हुआ था। ईसा के कई सौ वर्ष पहले उत्तर-मध्य बंगाल में पुंड्र, ब्रह्मपुत्र के पूर्व तथा पद्मा के उत्तर में बंग और राढ़, और उसके दक्षिण में भागीरथी के पश्चिम में सुह्म नामक कबीलों के लोग रहते थे। इसके अलावा और भी कई कबीले थे। जैसे कैवर्त या केवट, जो सारे भूखंड में फैले हुए थे—चण्डाल या चांडाल, डोम, हाड़ी, बागदी, बाउरी, चूहड़ आदि और भी कई कबीले थे।

कहना न होगा कि ये कबीले अनार्य थे। बंगाल में आर्य बहुत बाद को आए—और इसी लिए देर से वहाँ आर्य सभ्यता फैली। और जब आर्य सभ्यता फैली तो इन कबीलों को समाज में नीचा स्थान दिया गया।

आर्य लोग पश्चिम से आए और धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए। सुनीति बाबू ने लिखा है कि आर्यों से पहले जो द्रविड़ तथा कोल जातियाँ यहाँ रहती थीं, उनमें कोई सामान्य भाषा नहीं थी। आर्यों की भाषा ने न केवल इस कमी को पूरा किया, बल्कि उसने धीरे-धीरे यहाँ के सब लोगों पर हुकूमत भी कायम कर ली।

आर्यों ने धीरे-धीरे लगभग एक हजार साल में काबुल-कंधार से बंगाल तक अपनी भाषा फैला दी।

आर्य और अनार्य, द्रविड़ और अष्ट्रिक मिल कर उत्तर भारत की हिन्दू जाति में बदल गए। अनार्यों ने आर्यों की भाषा और आर्यों के धर्म---यानी वैदिक धर्म और यज्ञों आदि को अपना लिया। अनार्यों ने आर्यों के पुरोहित ब्राह्मणों की शिक्षा भी मान ली। पर अनार्यों का धर्म भी नहीं मरा और न उनका इतिहास-पुराण ही मरा। बहुत दिन साथ रहने के कारण आर्यों ने भी यहाँ के लोगों की बहुत सी बातों को अपना लिया। आर्य और अनार्य इस ताने-बाने से हिन्दू सभ्यता का वस्त्र तैयार हुआ।

आर्यों की भाषा इस मिली-जुली सभ्यता को फैलाने में साधन बनी।

जहाँ तक बंगला भाषा का सम्बन्ध है, उसके विषय में इतना जान लेना काफी होगा कि भले ही बंगाल, आसाम और उड़ीसा का आर्यीकरण सबसे बाद को हुआ, फिर भी मजे की बात यह है कि इन भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव किसी भी प्रकार पंजाबी, हिन्दी, मैथिली आदि से कम नहीं है। सम्भव है कुछ अधिक ही हो। बंगला तो संस्कृत के बहुत निकट है।

जब मौर्य राजाओं ने बंगाल को जीता तभी से मोटे तौर पर बंगाल का आर्यी-करण शुरू हुआ। मौर्य विजय के युग से गुप्त-राजवंश तक, यानी ई० पू० ३०० से ५०० ई० तक बंगाल का आर्यीकरण चलता रहा। दूसरे शब्दों में बंगाल के आर्यीकरण में ८०० वर्ष लगे। इन आठ सौ वर्षों में बंगाल में जो अष्ट्रिक और द्रविड़ भाषी जनता थी, उसने आर्यभाषा यानी मागधी-प्राकृत को अपना लिया, साथ ही ब्राह्मणों के नेतृत्व में चलने वाले धर्म तथा सभ्यता को भी ग्रहण कर लिया। जब वैदिक आर्यों का धर्म बंगाल में आया, तो साथ ही साथ बौद्ध और जैन मत का भी प्रसार हुआ। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि केवल बंगाल में ही नहीं, सारे भारत में आर्य सभ्यता में अनार्य सभ्यता घुल मिल गई थी।

आज के बंगाली अष्ट्रिक, द्रविड़, और आर्यों के मेल से बने हैं। यहाँ यह बता दिया जाय कि जो आर्य बंगाल में आए होंगे, वे भी विशुद्ध आर्य न होंगे। लगभग १००० वर्षों से वे भारत की दूसरी जातियों से घुलते-मिलते रहने के बाद यहाँ आए।

बंगला भाषा की उत्पत्ति :

ईसा की सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेन-सांग बंगाल में आए। उनकी लिखी हुई पुस्तक से मालूम होता है कि उस समय तक बंगाल ने आर्यभाषा सम्पूर्ण
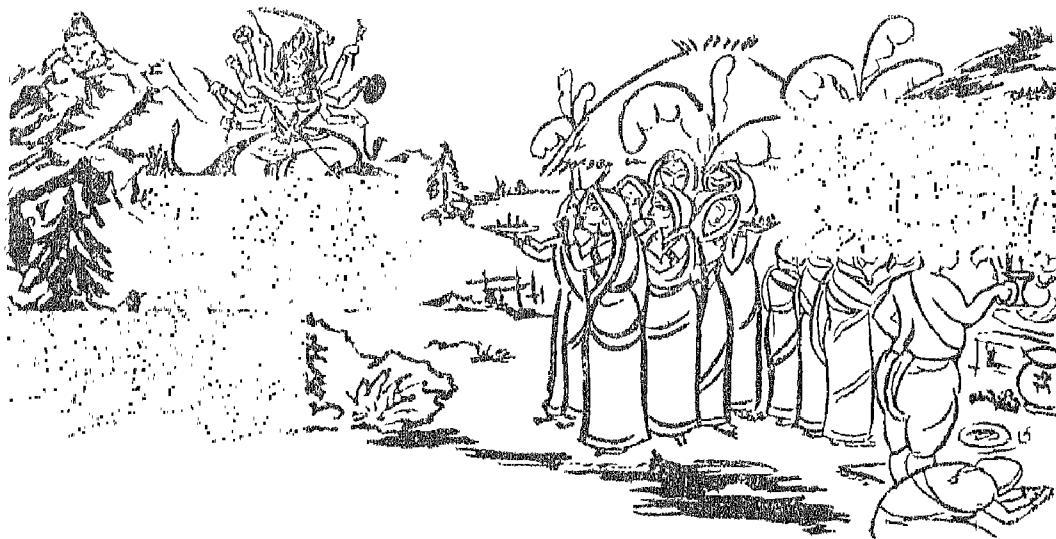
बंगाल में दुर्गा पूजा का त्योहार अपना विशेष महत्व रखता है। छोटे-बड़े, पढ़े-लिखे और गंवार सभी माता दुर्गा के सामने नतमस्तक हो जाते हैं।

रूप से अपना ली थी। अभी तक बंगाल की कोई अलग भाषा नहीं बनी थी। सुनीति बाबू का कहना है कि ७४० ई० के लगभग पाल राजवंश की प्रतिष्ठा हुई। और दो सौ साल के अन्दर ही मागधी-प्राकृत और बंगाल में प्रचलित मागधी-प्राकृत के अपभ्रंश से भिन्न एक दूसरी स्वतन्त्र भाषा का विकास हुआ, जिसे बंगला भाषा कहते हैं। दसवीं शताब्दी के मध्य भाग तक यह भाषा इतनी काम चलाऊ और स्वतन्त्र हो गई कि बौद्ध गुरुओं ने इस में साहित्य रचना करना जरूरी समझा।

यह कहा जा सकता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में बंगाल का अपना अस्तित्व स्थापित हो चुका था। बंगला के जो सब से प्राचीन नमूने प्राप्त हुए हैं, उनमें चर्यापद का विशिष्ट स्थान माना जाता है। यद्यपि कुछ लोगों का कहना है कि चर्यापद बंगला में नहीं बल्कि हिन्दी में लिखे गए थे। इस प्रकार का मतभेद स्वाभाविक है, क्योंकि उस समय तक बंगला और हिन्दी पूरी तरह अलग नहीं हुई थीं। हिन्दी में थोड़े से हेर फेर से ही जो भाषा इस इलाके में फैल रही थी, वह बंगला का ही प्रारंभिक रूप था।

इस सम्बन्ध में जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' का उदाहरण दिलचस्प होगा। गीत-गोविन्द संस्कृत में प्राप्त है। और अपने इस संस्कृत रूप में वह सारे भारत में प्रचलित

है, क्योंकि उसकी कोमल, कांत, पदावली सबको प्रिय है---यानी भाषा बहुत सरल और बढ़िया है। यह बारहवीं शताब्दी के अंत के दिनों की रचना है। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि गीतगोविन्द मूल रूप से पूर्व में प्रचलित पश्चिमी अपभ्रंश में या प्राचीन बंगला में लिखा गया था। और उस भाषा में वह लोगों में बहुत ही प्रिय हुआ। इन विद्वानों का यह अनुमान है कि जयदेव की लिखी हुई कविताएँ पंडित समाज को इतनी पसन्द आई कि उन्होंने उसे थोड़ा बहुत बदल कर संस्कृत भाषा में लिख दिया। अभी जनता में जो भाषा प्रचलित थी वह संस्कृत से अधिक दूर नहीं हटी थी, और उसमें मामूली परिवर्तन करने पर वह संस्कृत हो बन सकती थी। बाद को चल कर संस्कृत वाला गीतगोविन्द इतना मशहूर हो गया, कि असली---यानी बंगला का मूल गीतगोविन्द लुप्त हो गया। संस्कृत के गीतगोविन्द का महत्व इतना बढ़ा कि वह धर्म ग्रन्थों में शामिल हो गया। गीतगोविन्द के नमूने के कुछ बंगला गीत भी मिले हैं।
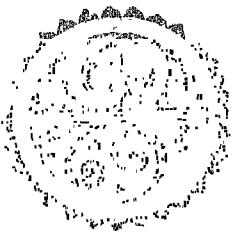
बंगाल में विदेशी

बंगाल में पालवंश का राज्य लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तक रहा। पालों के बाद सेन राजवंश का राज्य रहा। ऐसा समझा जाता है कि सेन राजवंश दक्षिण भारत के कर्नाटक से आया था। यह राजवंश बंगाल के अन्तिम हिन्दू राजाओं का खानदान था। इसी राजवंश के राजा लक्ष्मणसेन के राज्य में बंगाल पर मुसलमानों ने हमला किया, पर राजधानी गौड़ पर कब्जा हो जाने पर भी सेन राजा कुछ दिनों तक बीच के और बंगाल के पूर्व के इलाके में राज्य करते रहे। पश्चिम और दक्षिण-बंगाल में भी जहाँ तहाँ, कहीं सेन वंश के नाम से, और कहीं अपने नाम से कुछ राजा राज-कार्य करते रहे।

आखिर विदेशियों ने सारे बंगाल पर कब्जा कर लिया—पर उनके कब्जे का मतलब उनकी वीरता नहीं थी—जैसा कि सारे देश के बारे में कहा जा सकता है—देश के राजाओं में भी मेल नहीं था—वे आपस में ही लड़ते-झगड़ते रहे थे। यही बात बंगाल के राजाओं में भी थी। इस के साथ-साथ लड़ाई में वीरता दिखाने की जगह भी लोग ज्योतिष और धर्म पर यकीन करने लगे थे। कई बार तो ऐसा हुआ कि मुगल बादशाहों की फौजों ने हमला किया और हिन्दू राजाओं ने गौएं आगे कर दीं। उनका मतलब यह होता था कि मुगल फौजें गौओं को नहीं मारेंगी और जीत हमारी ही रहेगी—पर विदेशी हमलावरों के दिलों में गाय के लिए वैसे सम्मान के भाव न थे। उस समय कुछ लोग लड़ने यानी युद्ध-विद्या सीखने की भी जरूरत न समझते थे। उन दिनों की युद्ध-विद्या की एक किताब में लिखा है कि अगर दुश्मन की फौज चारों ओर से घेर ले तो क्या करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में कई बातें बताई गई हैं। उनमें से एक यह है कि श्मसान की राख में कुछ जड़ी-बूटियों को रगड़ कर मिलाया जाय और उसे तुरही पर अच्छी तरह मल कर यह मंत्र पढ़ा जाय :

ओ३म् अं हूं हलिया हे
महेली विहंजहो साहिणेहि
मशाणेहि खाहि लुखाहि किलि-
किलि कालि हुं फट् स्वाहा।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु

उसके बाद तुरही बजाई जाय। इसके साथ यह लिखा गया है कि धतूरे के पत्तों के रस में सफेद अपराजिता की जड़ घिस कर अपने माथे पर तिलक लगा कर सर्वज्ञोदय मन्त्र का जाप करे। ऐसा करने पर उस तुरही की आवाज से ही—"भवति पर चक्र भंग: स्वसैन्यविजय" :—यानी दुश्मन की फौज अपने आप अपने मोर्चों से उखड़ जाएगी और अपनी सेना की जीत होगी।*

ऐसी हालत में इस लोगों का हारना जरूरी ही था। पर इससे यह अंदाज लगाना ठीक नहीं कि जीतने वाले बहुत ताकतवर और बहुत काबिल रहे होंगे। उनकी जीत का अक्सर कारण यही होता था कि वे ठीक ढंग से संगठित होते थे।

उन दिनों बंगाल में बौद्धों की संख्या काफी थी, पर हिन्दू राजाओं ने उन्हें दबा रखा था। इस कारण जब मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अपने धर्म का प्रचार शुरू किया, तो बौद्ध लोग महज अपने पहले राजाओं से बदला लेने की दृष्टि से बहुत बड़ी तादाद में मुसलमान हो गये। बौद्ध लोग नेड़े या सिर-घुटे होते थे। आज तक बंगाल में यह शब्द मुसलमानों के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

* मध्ययुगेर बांगला ओ बांगाली, पृष्ठ ८

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो ज्यादती न होगी कि राजा और प्रजा में कोई मेल-मिलाप या ताल-मेल नहीं था। प्रजा का एक हिस्सा अपने को उनके जुल्मों का शिकार समझता था। इसके अलावा राजाओं तथा बड़े लोगों का सम्बन्ध ज्ञान-विज्ञान से नहीं रह गया था।

आक्रमणकारियों ने ब्राह्मणों के मन्दिरों और बौद्ध विहारों को खूब लूटा उनका असली उद्देश्य लूट मार करना था, पर घाते में लोगों पर रोब-दाब बैठता था। यह दूसरी बात है कुछ बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण भाग निकले, पर बाकी बुरी तरह पिटे। उन दिनों लोगों में बुजदिली यों ही छाई हुई थी। उन्होंने मुस्लिम विजय को ईश्वर की मर्जी मान लिया और इस प्रकार उस समय के साहित्य में उस परिवर्तन का काफी परिचय मिलता है। पर ऐसे भी लोग थे जिन्होंने जान दे दी, पर धर्म न छोड़ा। एक कविता का सारांश यह है—

बंगला साहित्य में प्राण फूंकने वाले श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी

> "चन्द्रशेखर नाम का एक वैद्य था। वह एक मूर्ति की सेवा करता था। मुसलमानों ने उसका घर घेर लिया, पर चन्द्रशेखर ने मूर्ति से अलग होना स्वीकार नहीं किया। इस पर आक्रमणकारियों ने चन्द्रशेखर का सिर काट लिया।"

यद्यपि जो मुसलमान आक्रमणकारी बन कर आए थे, वे बाहर के थे, पर थोड़े दिनों में ही जैसा कि पहले बताया जा चुका है—यहाँ के बहुत से लोग मुसलमान हो गए। जब मुसलमान यहाँ रह गए या बस गए, तो परस्पर मेल जोल बढ़ाने की प्रक्रिया भी काम करने लगी। लोगों ने मुसलमान पीरों-पैगम्बरों को हिन्दू देवताओं के साथ मिला

कर देखा । इस प्रकार एक कविता में कहा गया है कि ब्रह्माण मुहम्मद हैं, विष्णु पैगम्बर हैं, महेश बाबा आदम हैं, गणेश काजी हैं, कार्तिक गाजी हैं, मुनिगण फ़कीर हैं, नारद शेख हैं, पुरन्दर मौलाना हैं आदि ।

मुसलमान राजाओं ने हिन्दुओं को अपने यहाँ ऊँचे ओहदों पर रखा, विशेष कर मालगुजारी और जमींदारी के क्षेत्र में—मुख्यतः कायस्थ हिन्दू कर्मचारी रखे गए। ऐसे कितने ही हिन्दुओं का परिचय मिलता है जो मुसलमान राजाओं के दरबार में ऊँचे ओहदों पर नियुक्त थे । मुसलमान जमींदार भी अपने यहाँ पंडित तथा कवि रखते थे । अंग्रेजों ने भी ऐसा ही किया । अंग्रेजों ने व्यापार के लिए पहले पहल यहाँ कोठियाँ बनाईं तो गुमाश्ते यहीं के लोग बनते थे । बंगाल के हिन्दू मुसलमान गुमाश्तों ने कारीगरों पर बड़े-बड़े जुल्म किए और इन्हीं के जरिये एक दिन यहाँ अपना राज भी कायम कर लिया ।

मुस्लिम विजय के बाद से बंगाल का इतिहास वही है जो सारे उत्तर भारत का, यानी पहले पठान आए फिर उनके बाद मुगल । दिल्ली और आगरा से दूर होने के कारण—जब भी प्रान्तीय शासक कोई जबरदस्त व्यक्ति होता था, या जब भी केन्द्र में शक्ति कमजोर होती थी, तभी सूबा बंगाल बहुत कुछ स्वतन्त्र हो जाता था । यही बात बंगाल के अन्दर जो बड़े जमींदार थे, उन पर भी लागू होती है । यानी वे भी जब-तब स्वतन्त्र हो जाते थे ।

मुसलमान राजा बंगला साहित्य को आश्रय देने लगे और बंगला साहित्य की उन्नति होने लगी । ऐसा स्वाभाविक था क्योंकि जो लोग बाहर से आए थे उन की संख्या कम थी । वे यह आशा नहीं कर सकते थे कि उनकी भाषा बंगाल में चलेगी । विद्यापति मैथिल कवि हैं, पर बंगाली उन्हें अपना कवि मानते हैं । विद्यापति के अतिरिक्त मुस्लिम युग में कई बड़े बंगला कवि हो गए हैं, जिन में चण्डीदास, काशीराम दास, कृत्तिवास आदि काफी मशहूर हैं ।

श्री चैतन्य बंगाल के मशहूर कवि हुए हैं । वे कीर्तन द्वारा अपने विचारों का प्रचार करते थे । उन की वजह से बंगला भाषा के साहित्य में भी एक नई छाप पड़ी ।

श्री चैतन्य का प्रभाव बंगाल के बाहर विशेष कर उड़ीसा और आसाम पर भी पड़ा । श्री चैतन्य जिन दिनों कीर्तन का प्रचार कर रहे थे, उन दिनों नवद्वीप के काजी ने यह हुक्मनामा निकाला कि वे कीर्तन बन्द कर दें । पर श्री चैतन्य ने उस हुक्म

को मानने से इन्कार किया। जनता उनके साथ थी, इस लिए काजी को ही दबना पड़ा।

यह सब होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि महाप्रभु चैतन्य ने जो कुछ किया, उस का प्रभाव अच्छा ही रहा। श्री चैतन्य ने जिस अन्तरंग साधना या रस-धर्म का प्रचार किया वह किसी भी हालत में जनता के लिए नहीं था। पर सोलहवीं शताब्दी के मध्य-भाग में इस धर्म का प्रचार जनता में हुआ और उस से लोगों में निर्वीर्यता फैली, इस में कोई सन्देह नहीं। दुर्गा के वर-पुत्र गजपति प्रतापरुद्रदेव बड़े भारी योद्धा थे। सुलतान हुसेन शाह भी उन के राज्य पर कब्जा नहीं कर सके थे। वे श्री चैतन्य के भक्त हो गए। इसलिए उड़ीसा में वैष्णव धर्म जोरों से फैलने लगा। इस के फलस्वरूप दो पुरखों के अन्दर ही गजपति वंश का पतन हुआ। विष्णुपुर के मल्लराज वंश पर भी यही प्रभाव पड़ा। पर झारखण्ड दुर्गम देश था और यहाँ के लोग भी आदिम थे, इसलिए वहाँ की स्वतन्त्रता इतनी जल्दी नष्ट नहीं हुई।

यही बात दूसरे संतों पर भी लागू होती है। परलोक के पीछे भागने का सीधा परिणाम इहलोक से हाथ धोना होता है। इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि इहलोक नष्ट हो जाने पर ही परलोक की तरफ ध्यान अधिक जाता है।

महाप्रभु चैतन्य के दर्शन शास्त्र की गहराई में न जा कर हमें यह मानना पड़ेगा कि उन्हीं की बदौलत पहले-पहल बंगाल के बाहर बंगाल की आवाज़ गूँजी। गीतगोविन्द का प्रचार अवश्य ही अखिल भारतीय था। इसके अतिरिक्त बृहत्तर भारत यानी सुमात्रा और जावा के साथ लेन-देन में भी बंगाल का हाथ बहुत अधिक था। बंगाल के ताम्रलिप्त या तमलुक बन्दरगाह से हो कर भारतीय सभ्यता भारत के बाहर फैली।

जब से बंगाली बंगाली बने—यानी जब से बंगला भाषा की उत्पत्ति हुई—तब से लेकर अंग्रेजों के आने तक बंगाली लोग अक्सर गांवों में ही रहते थे। दो एक मुस्लिम राजधानियों के अलावा ज्यादा छोटे-छोटे गांव ही थे। समुद्र यात्रा में बंगालियों का अवश्य बहुत हिस्सा रहा और छोटे तथा बड़े जहाज देश-देशांतर में जाते थे। बाद में पुर्तगाली और डच आदि समुद्री डाकुओं के कारण यह कार्य समाप्त हो गया, यहाँ तक कि शास्त्रकारों ने समुद्र यात्रा को ही निषिद्ध करार दिया। इस सम्बन्ध में यह भी बता देना चाहिए कि सोलहवीं शताब्दी के बीच तक बंगाली इधर बर्मा, आसपास के द्वीप और उधर दक्षिण भारत, सिंहल, गोआ, गुजरात और अरब तक जाते थे। जहाजों में यात्रा करने वालों में बाद में मुसलमानों की संख्या अधिक होती गई थी।

श्री चितरंजन दास

जब फिरंगी समुद्री डाकुओं के कारण समुद्र यात्रा खतरनाक हो गई तो उससे देश को बहुत नुकसान पहुँचा। पर मुसलमान राजाओं के पास कोई सामुद्रिक सेना नहीं थी, और न उनके पास कोई ऐसे साधन थे जिसके द्वारा वे फिरंगी समुद्री डाकुओं से लोहा लेते। इसलिए यह कहना चाहिए कि इस क्षेत्र में बिना लड़ाई के ही हथियार डाल देना पड़ा। बंगाली तो घर-घुसा पहले से ही थे। इस क्षेत्र में पीछे हटा दिए जाने के कारण उनकी यह प्रवृत्ति और भी बढ़ गई।

पठानों के युग में बंगाल पर दिल्ली के शासन की बागडोर कुछ ढीली हो रही, पर मुगलों के आने के साथ हालात कुछ बदले। बंगालियों में फारसी का पठन-पाठन बढ़ा और वहाँ के मलमल की सारे भारत में मांग होने लगी। पर व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि सारे भारत में बंगाल का प्रभाव नहीं के बराबर था।

पर जब अंग्रेज भारत में आए और उनका राज्य धीरे-धीरे बढ़ने लगा, तो हालात बदलने लगे। १५३० ई० के पहले ही ईरान के आरमीनियों ने कलकत्ते में एक वाणिज्य केन्द्र स्थापित किया था। कैसे अन्य सब फिरंगियों को हरा कर अंग्रेज भारत में कदम जमाने में समर्थ हुए, इसका इतिहास यहाँ बताने की जरूरत नहीं है। सिराजुद्दौला के जमाने में बंगाल में अंग्रेजों ने अपना राज्य जमा लिया। जनता के साथ न तो नवाबों का कोई प्रेम सम्बन्ध था और न धनियों और जमीदारों के साथ ही नवाब का कोई बन्धन था। सच तो यह है कि अंग्रेजों के जमाने के पहले ही बंगाल में एक ऐसे उठते हुए वर्ग का उदय हो चुका था, जिसका स्वार्थ अंग्रेजों के साथ लेन-देन और कारोबार में था, न कि किसी और बात में। इस लिए जब नवाबनवाब और अंग्रेजों में

आमना-सामना हुआ तो ये लोग अंग्रेजों के साथ मिल गए। यही नहीं, इन्हीं लोगों में से कइयों ने तो नवाब को ऐन मौके पर धोखा दिया।

स्वामी विवेकानन्द

जब बंगाल में अंग्रेजों का झण्डा पहले-पहल गड़ा तो स्वाभाविक रूप से उत्तर भारत में अंग्रेजी का प्रचार सबसे पहले बंगालियों में हुआ। अंग्रेजों ने इस प्रकार भारत में अपनी विदेशी शिक्षा का प्रचार किया, उसका उद्देश्य भारत में विद्या का प्रचार नहीं था, बल्कि अपना काम चलाने के लिए रंगरूट तैयार करना था। भारत की लूट बड़े जोरों से चलने लगी। सचमुच ही यह लूट थी। इसका एक नमूना दिया जा सकता है। १८०७ ई० में यानी प्लासी के ५० वर्ष बाद यह हिसाब लगा कर देखा गया कि इसके पहले के तीस साल में १०५० करोड़ रुपया भारत से विलायत भेजा गया था। आज कल के हिसाब से यह रकम कितनी बड़ी है, इसका अनुमान किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह भी जानने योग्य है कि उन दिनों भारत का बहुत थोड़ा सा ही हिस्सा अंग्रेजों के अधीन था।

जहाँ तक बंगाल का सम्बन्ध है, उसको भी भारत के दूसरे राज्यों की तरह अंग्रेजों ने चूसा। बंगाल में ही मलमल पैदा होती थी, जिसकी माँग सारी दुनिया के धनियों में थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के लोग पेशगी रुपया देकर जुलाहों से कपड़ा बुनवाते थे। इन कपड़ों की माँग बहुत ज्यादा बढ़ गई। उधर मानचेस्टर और लंकाशायर में मिल का कपड़ा भी उत्पन्न होने लगा। पर मिल का कपड़ा मलमल के सामने इतना घटिया होता था कि विदेशी लोगों में उसकी बिक्री नहीं होती थी। कहते हैं कि जब उधर से

दबाव पड़ने लगा, तो मलमल तैयार करने वाले कारीगरों के अंगूठे काट लिए जाने लगे। एक कथन यह भी है कि यद्यपि कम्पनी की स्वीकृत नीति मलमल-उत्पादन के विरुद्ध होने लगी, पर कम्पनी के अन्तर्गत निजी व्यवसायी मुनाफा कमाने के लिए जुलाहों से अधिक से अधिक मलमल मांगने लगे। पर कारीगर थोड़े से थे, इस लिए कपड़ा कम उत्पन्न होता था। इस पर कारीगरों पर अत्याचार होता था। इसलिए उन में से बहुतों ने अत्याचार से बचने के लिए अपने अंगूठे खुद काट लिए।

यद्यपि अंग्रेज यहाँ किसी अच्छे उद्देश्य से नहीं आए थे। पहले उनका उद्देश्य व्यापार और बाद को अपना राज्य बनाना रहा। फिर भी उनके आने के कारण भारतीय एक नई और जोरदार सभ्यता के सम्पर्क में आ गए। इस का नतीजा बहुत ही क्रान्तिकारी हुआ। अब तक जैसे भारत संसार से अलग सा ही था, पर अब वह बृटिश शासन के अधीन रह कर ही सही, उस मुख्य धारा में आ गया।

शासकों को ऐसे लोगों की जरूरत थी जो देश की बातों को उन्हें अच्छी तरह समझा सकें और साथ ही साथ उनकी नौकरी कर सकें। इसके अलावा उन्हें इस देश की भाषा आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना था। शेषोक्त उद्देश्य के लिए १८०० ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। जिनमें अरबी, फारसी और संस्कृत के अतिरिक्त बंगला, मराठी, उड़िया, हिन्दी और उर्दू का पठन-पाठन होने लगा। भारतीय भाषाओं में छपाई का भी सूत्रपात हुआ। हालहेड नामक एक अंग्रेज ने पहला बंगला व्याकरण लिखा।

राजा राममोहन राय

नया युग

अंग्रेजों के आने के पहले तक बंगाल में अंधविश्वास बहुत फैला हुआ था। बहुत से भद्दे रीति-रिवाज चालू थे—जिन्हें लोग छोड़ना न चाहते थे। संस्कृत की शिक्षा तो चालू थी परन्तु पंडित लोग भी उस समय के अन्ध विश्वासों के चंगुल से बच न पाए थे। लड़की की शादी छोटी उम्र में ही कर दी जाती थी, समुद्र यात्रा करने वाले को जाति-बिरादरी से निकाल दिया जाता था। लड़की के विधवा होने पर उसे पति की लाश के साथ ही जला दिया जाता था, आदि आदि।

अंग्रेजों ने कलकत्ते में अपना अड्डा जमा लिया था और छोटे लोगों को बहका कर ईसाई बनाना शुरू कर दिया था—ऐसे समय में राजा राम मोहन राय ने सुधार का काम आरम्भ किया।

राजा राममोहन राय को इस नए युग का प्रतीक कहा जा सकता है। उनका जन्म १७७४ ई० में हुआ था। वे फारसी, अरबी और संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी के भी विद्वान् थे। उन्होंने १८०४ ई० में तोहफात-उल-मुआयहदीन नाम से फारसी पुस्तक लिखी, जिसमें एकेश्वरवाद का समर्थन किया। बात यह है कि ईसाई मिशनरी हिन्दुओं के बहुदेववाद की हँसी उड़ाया करते थे। राममोहन ने वेदान्त से एकेश्वरवाद को स्थापित किया। उन्होंने सती-दाह के विरुद्ध आन्दोलन किया। उन्होंने लोगों से यह कहा कि पुरानी बातों को छोड़ कर नई बातों को अपनाओ। उन्होंने जाति भेद का

विरोध किया, साथ ही एक उदार धर्म का प्रचार भी किया। बंगला-गद्य के प्रवर्तक रूप में भी उनका स्थान बहुत ऊँचा है। वे भारतीयों तथा अंग्रेजों में बराबरी के आधार पर सहयोग के समर्थक थे। वे ब्रह्म समाज के भी प्रवर्तक थे जिसने पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से प्रभावित बंगालियों को ईसाई बनने से बचाने के अतिरिक्त सम्पूर्ण बंगाली समाज पर बहुत प्रभाव डाला। सच तो यह है कि उनका प्रभाव बंगाल के बाहर भी बहुत अधिक पड़ा। १८३३ ई० में इंगलैंड के ब्रिस्टल नगर में उनका देहान्त हुआ।

राजा राममोहन राय के यत्न से ही देश भर में अंग्रेजी स्कूल-कालेज खुल गए और कई अंग्रेज अध्यापक भारतीयों को अंग्रेजी साहित्य के साथ-साथ स्वदेश प्रेम का पाठ भी पढ़ाने लगे। ऐसे अंग्रेजों में डिरोजियो का नाम बहुत उल्लेखनीय है। डिरोजियो ने कालेज में अध्यापन के अतिरिक्त लेखों तथा व्याख्यानों से भी बहुत काम किया। उनके शिष्यों में बंगाल के कई बहुत बड़े-बड़े लोग हैं। ब्रिटिश सरकार तो डिरोजियो के विरुद्ध थी ही, कई कट्टर हिन्दू नेता भी उसके विरुद्ध हो गए क्योंकि डिरोजियो नवीन विचारों के साथ-साथ जाति-पाँत छोड़ कर एक साथ खाने-पीने—यहाँ तक कि गाय और सूअर का मांस खाना भी प्रचलित कर रहे थे। स्मरण रहे कि इन्हें ईसाई धर्म के प्रचार में कोई दिलचस्पी नहीं थी, फिर भी कई हिन्दू नेता उनके प्रचार की सफलता से बहुत भड़क गए और उन्हें १८३१ ई० में हिन्दू कालेज से निकाल दिया गया। इसके बाद भी वे नहीं दबे और 'ईस्ट-इण्डिया' नाम से एक दैनिक अखबार चलाने लगे। पर दुर्भाग्य से वे उसी साल २३ दिसम्बर को मर गए।

डिरोजियो के प्रमुख शिष्यों में केवल एक ही व्यक्ति ईसाई बने थे। वे भी इस कारण कि समाज ने उन को सताया। दूसरे शिष्य जोरों के साथ समाज-सुधार का आन्दोलन चलाने लगे। राममोहनराय की जिन्दगी में ही कानून बना कर सती-प्रथा रोक दी गई थी। प्रेस कानून भी कुछ हलका कर दिया गया, इसलिए विभिन्न विचारों के तरह-तरह के अखबार भी निकलने लगे।

इस तरह सबसे पहले बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार आरम्भ हुआ। पहले-पहल अंग्रेजों ने तो अपने काम के लिए क्लर्क लोगों की फौज खड़ी करने के लिए ही अंग्रेजी शुरू की थी, परन्तु राजा राममोहन राय और उनके साथी यह भी महसूस करने लगे थे कि अब अंग्रेजी पढ़े बिना काम भी न चलेगा। वे अनुभव करने लगे कि इसे पढ़े बिना वे संसार की दौड़ में पिछड़ जाएँगे और नये ज्ञान-विज्ञान से कोरे रह जाएँगे। यही

बातें थीं जिनके कारण आगे चल कर लोगों को अंग्रेजों की गुलामी भी अखरने लगी।

आमतौर से पढ़े लिखे लोग स्वराज्य की बात तो नहीं, पर अंग्रेजों और भारतीयों की बराबरी की बात करने लगे थे। नौकरियों में भारतीयों को उचित भाग देने की बात ऐसे लोगों में भी उठने लगी थी जो राजभक्त समझे जाते थे।

अभी तक कोई खास दल नहीं बना था, पर समाचारपत्रों में कुछ न कुछ विरोधी आन्दोलन चल रहा था। कट्टर लोगों की धर्म सभा और दूसरे लोगों की ब्रह्म सभा में आपस में जो जूता-पैजार हुआ करता था, वह अब कुछ ठण्डा पड़ गया था। १८३७ ई० के १२ नवम्बर को पुराने ढर्रे के तथा नए विचारों के जमींदारों की एक सभा हुई। कोई भी जमींदार इस सभा में आ सकता था। १९ मार्च १८३८ ई० को बाकायदा इस सभा को संगठन का रूप दिया गया, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज सब तरह के जमींदार भाग ले सकते थे।

उक्त सभा केवल जमींदारों की थी। इसके साल भर के अन्दर ही बृटिश इण्डिया सोसायटी की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य भारतीयों के सम्बन्ध में अंग्रेजों में ज्ञान की वृद्धि करना था। बाद को चल कर उक्त दोनों संगठनों में गठबन्धन हो गया और बृटिश-इण्डिया सोसायटी' जमींदारों के लिए इंगलैंड में आन्दोलन करने लगी।

और भी जो संस्थाएँ बनीं उनमें बंगाल बृटिश इण्डिया सोसायटी उल्लेखनीय है। तरह-तरह की लहरें तथा प्रति लहरें जारी थीं। जिनका ब्योरा यहाँ नहीं दिया जा सकता। १८५१ में नेशनल एसोशिएशन नाम से एक सभा बनी जिसके मंत्री श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे। इस संगठन का उद्देश्य अखिल भारतीय था। मद्रास और बम्बई में भी इसका कुछ प्रचार हुआ। देवेन्द्रनाथ ठाकुर धार्मिक नेता होने के साथ ही बहुत बड़े समाज सुधारक भी थे। स्मरण रहे कि वे श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता थे।

१८५८ ई० में कवि रंगलाल ने एक कविता लिखी थी जो घर-घर गाई जा रही थी। जिसका अर्थ यह है कि भला स्वतंत्रता के बिना कौन जीना चाहता है, अपने पैरों में गुलामी की बेड़ी कौन पहनना चाहता है, इत्यादि। बंगला साहित्य में भी नव-युग की आशा झलकने लगी थी। दीनबन्धु मित्र ने 'नील दर्पण' नाम से १८६० में एक नाटक लिखा, जिसमें नील की खेती करने वाले किसानों की दुर्दशा का वर्णन किया गया था। इस पुस्तक के अनुवादक पादरी जेम्स. लांग. को एक महीने की सख्त सजा और एक हजार रुपए का जुर्माना हुआ।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

बंगला साहित्य में बंकिमचन्द्र का उदय एक बहुत बड़ी घटना है। वे एक तरह से बंगला साहित्य और राष्ट्रीयता के नये दौर के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। बंकिम के 'आनन्द मठ' ने वह काम किया जो आधुनिक युग में शायद किसी एक पुस्तक ने न किया होगा। यद्यपि यह एक उपन्यास मात्र है, पर इसमें संन्यासी विद्रोह की आड़ लेकर देश प्रेम का पाठ दिया गया है। और यह कहा जा सकता है कि इसी पुस्तक में हमें पहले-पहल अखिल भारतीय देशभक्ति का परिचय मिलता है। उनके अन्य उपन्यासों में भी एक स्वस्थ उल्लास और जीवन के प्रति प्रेम मिलता है। पहले वन्दे मातरम् में त्रिंशकोटि का जगह सप्तकोटि था, पर यह देखने की बात है कि बंकिम के उपन्यासों में अखिल भरतीय देशभक्ति का ही परिचय मिलता है। उन्होंने राजपूतों और मराठों के इतिहास से अपने उपन्यासों के लिये वीर चुने।

कवि माइकेल मधुसूदनदत्त ईसाई थे, पर उन्होंने जो काव्य लिखे उनमें किसी तरह का कट्टरपन नहीं है, बल्कि एक स्वस्थ मनोवृत्ति ही देखने में आती है। माइकेल ने विदेशी साहित्य से बहुत कुछ अपनाया, पर उनकी कविता में प्राच्य और पाश्चात्य काव्य का समन्वय मिलता है। बंकिम के गद्य तथा उसके पद्य ने बंगालियों के हृदय में अंग्रेजी साहित्य के मुकाबिले में जो हीनता थी, उसे बहुत कुछ दूर कर दिया। और लोग यह समझने लगे कि हमारा साहित्य भी महान् हो सकता है। इस भावना ने भी एक प्रकार से राष्ट्रीयता को बल पहुँचाया।

बंकिम, माइकेल तथा उस युग के साहित्यकारों ने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया जिससे लोगों में एक नई उमंग पैदा हो गई। पहले कविता के नाम पर केवल धार्मिक

कविता थी, साहित्य के नाम पर केवल धार्मिक गपोड़े तथा कथाएँ थीं, पर अब साहित्य में देश प्रेम, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, एक हद तक स्वतन्त्र चिन्तन आदि बहुत सी बातें आगईं, जो पहले के साहित्य में नहीं थीं। जैसे सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में राजा राममोहन राय तथा ब्रह्म समाज ने एक क्रांति उपस्थित कर दी। उसी तरह से बंकिम तथा माइकेल ने साहित्य के क्षेत्र में एक नया युग उपस्थित कर दिया। इन सारी बातों

श्री अरविंद

को इस बात से बल मिला कि भारत में एक नये पूँजीपति वर्ग तथा मध्यम वर्ग की उत्पत्ति हो चुकी थी, जो अंग्रेजी राज्य के कारण और उसी के सहारे पनपने पर भी अब यह समझने लगा था कि अंग्रेजों के चले जाने में ही उनकी भलाई है, क्योंकि विदेशी पूँजीवाद एक हद तक ही देशी पूँजीवाद को पनपने दे सकता था। जो पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही थीं उन में बराबर इसी प्रकार की आवाज उठ रही थी।

पहले ही हम कुछ संगठनों तथा सभाओं के बारे में बता चुके हैं। आगे के संगठनों का उल्लेख करने से पहले यह बता देना जरूरी है कि १८५७ ई० में जो विद्रोह हुआ था, उसका बंगाल पर क्या प्रभाव पड़ा। यदि एक वाक्य में कहा जाय तो इन दिनों या इसके बाद के युग में जो बंगाली राष्ट्रीय अथवा साहित्यिक क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे थे, उन पर १८५७ का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण क्या हो सकता है, इस पर गम्भीर खोज की जरूरत है।

१८६० के लगभग माइकेल मधुसूदनदत्त ने 'मेघनादवध' लिखा। 'मेघनादवध' ने बंगालियों के हृदय में नयी आशा का संचार किया। उन्होंने कहा कि "गदर का समर्थन या उसकी प्रशंसा करने का साहस लोगों में नहीं था। बात यह है कि लार्ड केनिंग के

जमाने में जो प्रेस कानून नए ढंग से बना, उसके फलस्वरूप अखबार व पुस्तक-पुस्तिकाएं सभी कुछ जब्त हो सकती थीं। शिक्षित बंगाली मन तब तक शायद इतना शिथिल नहीं हो गया था, इस लिए उसके लिए गदर की व्यर्थता की ग्लानि के साथ-साथ संग्राम में दिखाई गई वीरता की उपलब्धि सम्भव थी। शायद कुछ लोगों ने इस वीरता पर ध्यान दिया था और सम्भव है अपने दबे विचारों को प्राचीन काव्य के सांचे में ढाल कर जन साधारण के निकट प्रकाश भी करना चाहा था।"

माइकेल मधुसूदन ने अपने काव्य में रावणनन्दन इन्द्रजीत को ही अपने काव्य का नायक बनाया था। हमारे धर्मग्रन्थों में विभीषण को भक्त शिरोमणि करके चित्रित करने को जो परिपाटी है, उसके विपरीत माइकेल ने उसे देशद्रोही करके चित्रित किया था। यह दिखलाया गया था कि ऐसे देशद्रोहियों के कारण जाति का किस प्रकार नाश हो जाता है। श्री बागल का यह कहना है कि गदर के बाद ही 'मेघनादवध' काव्य का बंगाल में इतना आदर हुआ, इस का कारण केवल छन्द का नयापन या इसकी महानाई नहीं है, बल्कि इसमें किसो और बात का भी प्रकाश है। यदि बागल जी की यह बात मान भी ली जाय तो भी मेरा वह कथन ठीक ही रहता है कि १८५७ का उस युग के नेताओं या जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह केवल बंगाल के लिए ही नहीं बल्कि सब प्रान्तों के लिए सत्य है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन का श्रीगणेश

१८६७ में चैत्र मेला नाम से एक उत्सव का आरम्भ हुआ और उसी के इर्द-गिर्द एक आन्दोलन चल निकला। ज्ञानेन्द्रनाथ ठाकुर, गणेन्द्रनाथ ठाकुर, नवगोपाल मित्र आदि इसको चलाने वाले थे। इन मेलों के प्रवर्तकों ने यह साफ कह दिया था कि साल के अन्त में हिन्दुओं को एकत्रित करना इनका उद्देश्य है, पर इसका परिणाम क्या होगा यह अभी दिखाई नहीं पड़ रहा है। फिर भी आपस में मिलना-जुलना कितना अच्छा है, यह सभी को मालूम है। यह स्पष्ट कर दिया गया था, "हमारा यह मिलना-जुलना साधारण धार्मिक कृत्यों के लिए नहीं है, किसी विषय-सुख या तफरीह के लिए भी नहीं है, बल्कि यह स्वदेश और भारत भूमि के लिए है।"

इसमें यह भी कहा गया था कि हमारे सामने एक महान उद्देश्य है। वह उद्देश्य है आत्म निर्भरता सीखना। इस मेले के आरम्भ करने वाले एकता बढ़ाना, सामाजिक उन्नति, शिक्षा, कला, संगीत, स्वास्थ्य, साहित्य सभी क्षेत्रों में भारत की उन्नति चाहते थे। मेले में संस्कृत और बंगला कविताएँ पढ़ी जाती थीं, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक निबन्ध पढ़े जाते थे, कुश्ती का प्रदर्शन होता था और लेखकों तथा कलाकारों को पुरस्कार दिया जाता था। इसके अलावा घरेलू उद्योगों की प्रदर्शनी भी होती थी। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इन मेलों में बहुत भाग लिया। यह मेला आन्दोलन १८८० ई० तक बराबर जारी रहा।

बाद में इन्हीं सभा-समाजों से कांग्रेस की उत्पत्ति हुई। आगे चल कर कांग्रेस

को चाहे जितना महत्त्व मिला हो---क्योंकि गांधी जी ने इसका साधारण जनता के साथ सम्बन्ध जोड़ा---पर उन शुरू के दिनों उस का कोई विशेष महत्त्व नहीं था।

इन दिनों बंगाल के राजनैतिक क्षेत्र में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, और कुछ बाद को चल कर विपिनचन्द्र पाल आदि का उदय हुआ, जो लगभग गांधी-युग तक बंगाल के नेता बने रहे। उस जमाने में राजनैतिक कार्य के अर्थ केवल व्याख्यान देना था, इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सुरेन्द्रनाथ आदि बहुत अच्छे वक्ता थे। कांग्रेस अपने जन्म के साल से ही शिक्षित भारतीयों की संस्था बन गई और उसमें छोटी-छोटी बातों पर सरकार से मांग की जाने लगी---जैसे भारतीयों को अधिक नौकरियाँ देना, आई० सी० एस० की परीक्षा भारत में करवाना इत्यादि-इत्यादि।

परमहंस रामकृष्ण और विवेकानन्द :

परमहंस रामकृष्ण (१८३६ से १८८६ ई०) एक आधुनिक सन्त थे। उन्हें प्रधान शिष्य के रूप में स्वामी विवेकानन्द प्राप्त हुए। विवेकानन्द के अतिरिक्त बंगाल के बहुत बड़े विद्वान्, लेखक, कलाकार तथा राष्ट्रीय नेता----जैसे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, महेन्द्रलाल सरकार, शिवनाथ शास्त्री, नाटककार गिरीशचन्द्र घोष, राजनैतिक नेता अश्विनीकुमार दत्त ये सभी उन पर मुग्ध थे।

स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२) उनके विशेष भक्त रहे। और यह कहा जा सकता है कि इन्हीं के कारण रामकृष्ण परमहंस की वाणी सारे भारत में और भारत के बाहर भी फैली। उन्होंने ही रामकृष्ण मिशन का संगठन किया, जो आज भी समाज कल्याण के क्षेत्र में शायद सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है।

क्या रामकृष्ण परमहंस का यह प्रभाव उनके द्वारा प्रचारित धर्म के कारण है? उनके पहले भी तो बहुत से लोगों ने धर्म प्रचार किया था, पर रामकृष्ण परमहंस की विशेषता यह थी कि उन्होंने सब धर्मों में एकता की आवाज उठाई---सर्व-धर्म समन्वय का नारा बुलन्द किया। केवल बुलन्द ही नहीं किया, बल्कि वे उसके प्रतीक बने। बंगाल जैसे राज्य को, जिसमें आधे से अधिक मुसलमान थे, उन जैसे नेता की आवश्यकता थी।

रामकृष्ण-विवेकानन्द का प्रचार बंगाल के युवकों में इसलिए हुआ कि विवेकानन्द निरे धार्मिक कठमुल्ला नहीं थे। उन्होंने यह कहा कि गीता पढ़ने से फुटबाल खेलना

ज्यादा जरूरी है। इस प्रकार से उन्होंने बंगाल के उठते हुए नौजवानों को एक नई दिशा दी। यही कारण है कि बंगाल के क्रांतिकारियों में रामकृष्ण-विवेकानन्द के भक्त बहुत थे। सच तो यह है कि जब तक क्रांतिकारियों ने मार्क्सवाद को ग्रहण नहीं किया, तब तक उनमें विवेकानन्द का प्रभाव ही अधिक रहा। विवेकानन्द ने अपने धर्म में सामाजिक सुधार तथा देश के पुनरुत्थान की बात कही। भारत के दूसरे हिस्सों में स्वामी दयानन्द आदि सुधारकों ने जो कार्य किया, विवेकानन्द ने वही कार्य इधर के प्रान्तों में किया। जहां तक कट्टरता का सम्बन्ध है, वे बिलकुल कट्टर नहीं थे। उनका धर्म एक उदार धर्म था, जो संसार का त्याग न कर समाज और व्यक्ति का कल्याण करना चाहता था।

राजनैतिक चेतना :

जिस समय, कांग्रेस की स्थापना हो रही थी, उस समय सर कोर्टनी इलबर्ट बड़े लाट के कानूनी-सलाहकार थे। वे साधारण अंग्रेजों से कुछ उच्च विचार रखते थे। कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट बिहारीलाल गुप्त ने बंगाल के छोटे लाट को एक पत्र लिखा था, जिसमें यह कहा गया था कि इस समय भारतीय मैजिस्ट्रेटों को अंग्रेजों का मुकदमा लेने का अधिकार नहीं है, यह पाबन्दी हटनी चाहिए। छोटे लाट ने यह पत्र सर इलबर्ट को भेज दिया। इलबर्ट ने एक विधेयक बना कर यह अधिकार भारतीय मैजिस्ट्रेटों को देना चाहा। इस पर भारत में रहने वाले अंग्रेजों में तहलका मच गया और बड़ा शोर बरपा हुआ। यहां तक कि अंग्रेजों ने मिल कर बड़े लाट साहब लार्ड रिपन का अपमान किया। अंग्रेजों ने बंगाल के छोटे लाट टामसन की जानकारी में ही यह षड्यंत्र किया कि लार्ड रिपन को जबरदस्ती जहाज पर बिठा कर विलायत भेज दिया जाय। गोरों ने मिलकर अपनी रक्षा के लिये एक डिफेन्स एसोसियेशन भी बनाया, जो बाद को चलकर यूरोपियन एसोसियेशन बन गया।

इस पर भारतीयों में भी बड़ी सनसनी मच गयी। होते-करते १८८३ की २८ जनवरी को इलबर्ट बिल अपने पूर्व रूप में तो नहीं, ऐसे रूप में पास हुआ कि कानून में दिखावे के तौर पर फर्क आने पर भी कोई वास्तविक फर्क नहीं आया। गोरे अभियुक्त को यह अधिकार रहा कि वह इस बात की मांग कर सकता था कि जूरी के आधे लोग गोरे हों। यदि इस मांग की पूर्ति करना सम्भव न हो तो अदालत के

लिये यह लाजिम हो गया कि वह आसपास के किसी जिले में, जहाँ जूरी मिल सकते हों, मुकदमा तबदील कर दें। इन सब झंझटों के कारण अक्सर भारतीय हाकिम गोरे अभियुक्तों का मुकदमा अपनी अदालत में लेते ही नहीं थे।

इन्हीं दिनों सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को अदालत के अपमान के अभियोग में दो महीने की कैद हुई। बात यह थी कि हाईकोर्ट के जज नारिस के इजलास में होने वाले एक मुकदमे में अदालत में शालिग्राम-शिला मंगाई गई थी। यद्यपि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कट्टर सनातन पन्थी नहीं थे और विलायत वगैरह हो आए थे, (उन दिनों विलायत जाने के कारण लोग समाज से निकाल दिये जाते थे) फिर भी उन्होंने इस घटना का विरोध किया। इसी पर उन्हें सजा दी गई। इस पर केवल बंगाल में ही नहीं, सारे भारत में सभाएँ आदि हुई। इधर इलबर्ट बिल के कारण गोरे तथा उनके पत्र खुल्लम-खुल्ला यह कहने लगे थे कि भारतवासी आखिर गुलाम ही हैं। यदि उनमें से दो-चार लोग मैजिस्ट्रेट बना दिए गये, तो उन्हें यह दावा नहीं होना चाहिए कि वे गोरों के मुकदमों में जज बन कर बैठने की हिम्मत करेंगे।

इन सब कारणों से लोग बहुत भड़क गए। एक राष्ट्रीय फंड की स्थापना हुई, स्वदेशी का स्पष्ट नारा तो नहीं दिया गया, पर यह कहा गया कि लोगों को नौकरियों के बजाय व्यापार और उद्योग-धन्धों पर निर्भर करना चाहिए। यह भी बात चल पड़ी कि कुछ राजनैतिक-मिशनरी हों, जो लोगों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाएँ।

जब सुरेन्द्रनाथ जेल से छूटे तो १८८३ के दिसम्बर में एक नेशनल कान्फ्रेंस की गई, जिसका तीन दिन तक अधिवेशन होता रहा। लगभग एक सौ प्रतिनिधि आए थे। इसमें प्रतिनिधि मूलक व्यवस्थापिका सभा कारीगरी और शिल्प-शिक्षा आदि नौकरियों और दूसरे उच्चपदों पर भारतीयों को नियुक्त करना, राष्ट्रीय फंड की स्थापना, अस्त्र कानून का हटाया जाना आदि विषयों पर प्रस्ताव रखे गए।

मई १८८४ में सुरेन्द्रनाथ भारत-भ्रमण करने निकले। अब की बार वे काफी सफल रहे। १८८५ में दिसम्बर में अब तक बने हुए कई एसोसियेशनों की सम्मिलित बैठक हुई, और उसमें सारे भारत से प्रतिनिधि आए। इस प्रकार से सारे भारत में जो आन्दोलन चालू था उनका सम्मिलित रूप कांग्रेस बन कर सामने आया। कांग्रेस बड़े दिनों की छुट्टियों की तफरीह के रूप में बढ़ती रही।

वंग-भंग :

लार्ड कर्जन जिन दिनों वायसराय थे, उन दिनों बहुत-सी बातें हुईं। उन्होंने कई बहुत अच्छी बातें कीं, पर सारी अच्छी बातें करने में उनका दृष्टिकोण यही रहता था कि भारतीय बहुत छोटे दर्जे के आदमी हैं और उनका सुधार होना चाहिए। उन्होंने बंगाल के दो टुकड़े कर देने की बात उठाई। पर इसके विरुद्ध आन्दोलन होने लगा। यहाँ तक कि कांग्रेस ने भी इसके विरोध में आवाज़ उठाई। फिर भी १९०५ में वंग-भंग होकर रहा। इसके द्वारा लार्ड कर्जन मुसलमानों को खुश करना चाहते थे। पहले-पहल ढाका के नवाब तथा दूसरे कुछ मुसलमानों ने वंग-भंग का विरोध किया। पर अन्त में वे भी कर्जन के भुलावे में आ गए। सच तो यह है कि पाकिस्तान का मूल विचार यहीं से शुरू हुआ।

वंग-भंग के विरुद्ध इतना जोरदार आन्दोलन उठ खड़ा हुआ कि शत्रु-मित्र दोनों को आश्चर्य हुआ। कवीन्द्र रवीन्द्र ने आगे बढ़ कर इसके विरुद्ध नारा दिया। उन्होंने कहा कि जड़ को जाग्रत करने का एक ही उपाय है वह है आघात, अपमान और अभाव। इसलिए हम इस आघात का स्वागत करते हैं। स्वदेशी की आवाज जोरों से उठाई गई और कवियों तथा लेखकों ने इस नारे को घर-घर पहुँचा दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रजनी कान्त, द्विजेन्द्र लाल राय ने गीतों से इस आन्दोलन को पुष्ट किया। मजे की बात है कि यद्यपि सरकार मुसलमान शिक्षित वर्ग को वंग-भंग के मामले में एक हद तक तोड़ने में सफल रही, फिर भी स्वदेशी के नारे पर हिन्दू-मुसलमान सभी एक जुट होकर काम करने लगे। जगह-जगह संस्थाएँ बनीं। सरकार की ओर से यह तय हुआ कि १६ अक्टूबर को वंग-भंग कार्य रूप में परिणत होगा। इस दिन के लिए रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने रक्षाबन्धन और प्रसिद्ध लेखक रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी ने अरन्धन यानी चूल्हे न जलाने का नारा दिया, जो मान लिया गया। रक्षाबन्धन के लिए रवीन्द्र नाथ ने एक विशेष गीत की रचना की, जो घर-घर गाया जाने लगा।

इन्हीं दिनों बन्दे मातरम् की ध्वनि घर-घर में फैल गई। स्त्रियों ने स्वदेशी के कार्य में बहुत जोरों से हाथ बढ़ाया। नेतागण जो भी काम उठाते, उसमें सफलता मिलती। चन्दा खूब मिलता था। उन दिनों पहले-पहल सार्वजनिक रूप से चर्खा और करघा का नारा दिया गया। पशुपति बोस के दरवाजे पर एक सभा हुई थी, उसमें स्वदेशी भवन तैयार करने के लिए पचास हजार चंदा मिला। इसी से २०९, कर्नवालीस

बंगाल के परम साधक संत परमहंस रामकृष्ण

स्ट्रीट में एक करघा विद्यालय खोला गया। कई सौ चरखे तैयार किए गए। इन्हीं दिनों बंग लक्ष्मी काटन मिल आदि बहुत से स्वदेशी कारखाने खुले।

सरकार ने लोगों को जेल भेजना शुरू किया। पत्रों ने आन्दोलन का साथ दिया। इस लिए सम्पादकों और लेखकों को भी सजा दी जाने लगी। सार्वजनिक आन्दोलन चालू रहा, पर कुछ शिक्षित नौजवानों के मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि केवल सभा आदि करने से या स्वदेशी का व्रत ग्रहण करने से कुछ नहीं होने का। ऐसे सोचने वालों में अरविन्द घोष और उनके छोटे भाई वारीन्द्र घोष, स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त, सखारामगणेश देउसकर, उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय इत्यादि थे।

सार्वजनिक आन्दोलन केवल बंगभंग को रद्द कराने के लिए शुरू हुआ था, पर धीरे-धीरे किस प्रकार से यह आन्दोलन स्वतन्त्रता-आन्दोलन में परिणत हो गया, किस प्रकार से वैध आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन में बदल गया, और उसकी चिनगारी सारे भारत में फैली। इसका ब्योरा यहाँ देना सम्भव नहीं है। १९११ तक परिस्थिति इतनी विकट हो गई कि ब्रिटिश सरकार ने बंग-भंग रद्द कर दिया, पर स्वतन्त्रता के लिए जो आन्दोलन चल चुका था वह अब नहीं रुका। १९०८ के अलीपुर षड्यन्त्र से ले कर बराबर क्रान्तिकारी षड्यन्त्र जारी रहे।

जब १९१४ में पहला महायुद्ध छिड़ा, तब—क्रान्तिकारी आन्दोलनों ने एक नया रुख अख्तियार किया। भारत के क्रान्तिकारियों ने अंगरेजों के शत्रुपक्ष से सम्पर्क स्थापित किया। यहां तक कि जर्मन क्रान्तिकारियों की मदद के लिए अस्त्र-शस्त्रों से भरा

एक जहाज भेजने के लिए राजी हो गए। उत्तर भारत के गदर दल तथा रासबिहारी बोस के दल ने सेना में भी काम किया। जहाँ तक बंगाल का सम्बन्ध है, वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि इन क्रान्तिकारियों ने अपने देश को वह चीज दी जिस की उसे बहुत सख्त जरूरत थी। भारत या बंगाल में कभी भी बड़ी-बड़ी बातें करने वाले दार्शनिकों की कमी नहीं रही, कमी रही तो सिर पर कफन बाँधे हुए त्यागी वीरों की, जो उन वचनों को कार्य रूप में परिणत करते हुए हँस-हँस कर बलिदान कर सकते थे। खुदीराम, कन्हाई लाल से ले कर सैंकड़ों क्रांतिकारियों को फांसी हुई, हजारों कालेपानी भेजे गए, जहाँ वे तिल-तिल कर प्राण देते रहे। कई पागल हो गए। फिर भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में कभी युवकों और बाद में चल कर युवतियों की कमी नहीं हुई। अभी इन वीरों का यथार्थ मूल्य आंकने का समय नहीं आया, पर इस में सन्देह नहीं कि आज बंगाली भले-बुरे जो कुछ भी हैं, उन्हें उस रूप में बनाने में इन क्रान्तिकारियों ने बहुत बड़ा हाथ बंटाया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दूसरा वर्ग जिस ने आधुनिक बंगाल को बनाया---वह है बंगाल का साहित्यकार-वर्ग। और इन में भी (बंकिम को हम छोड़ देते हैं) रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दान सब से अधिक है। यद्यपि वे जनता के कवि या साहित्यकार नहीं थे, पर उनकी वाणी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बंगालियों की नस-नस में समा गई। वे कवि थे, उपन्यासकार, नाटककार, अभिनेता, नेता, शिक्षाशास्त्री, भाषाशास्त्री सभी कुछ थे। आश्चर्य तो यह होता है कि वे क्या नहीं थे।

उनके अतिरिक्त काजी नजरुलइस्लाम, शरत्चन्द्र आदि कितने ही साहित्यकार

हुए जिन्होंने बंगाल को बनाया । कुछ लोगों को शायद यह सन्देह हो कि मैं साहित्य-कारों को अधिक महत्व दे रहा हूँ, पर यह बात नहीं । बंगाल में कुछ परिपाटी ऐसी रही है कि साहित्यकारों को सदा ही अधिक सम्मान के साथ देखा गया है । इस के अलावा उन की कृतियाँ बराबर पढ़ी जाती हैं और सभ्य समाज में इन कृतियों पर आलोचना न कर पाना असभ्यता या पिछड़ेपन की निशानी समझी जाती है । बंगाल में साहित्यकारों का आदर हमेशा से राजनैतिक नेताओं से अधिक रहा है ।

१९२१ में असहयोग आन्दोलन आया तो बंगाल ने उसमें पूर्ण रूप से भाग लिया । कांग्रेस के अन्दोलनों में बंगाल से जेल जानेवालों की संख्या बहुत अधिक रही । असहयोग के युग में बंगाल के क्रांतिकारी चुप्पी साध गए पर चौरी-चौरा के कारण उसे स्थगित कर दिए जाने के बाद क्रांतिकारी फिर से मैदान में कूद पड़े और यह सिलसिला बराबर जारी रहा । देशबन्धु चित्तरंजन दास ने १९२१ के आन्दोलन का नेतृत्व किया था, पर वे अकाल मृत्यु के शिकार हो गए । उन्हीं के अनुयायी सुभाष बाबू बाद में बंगाल कांग्रेस के नेता रहे ।

१९३५ के शासन सुधार के फलस्वरूप जो चुनाव हुआ उसमें बंगाल का शासन मुस्लिमलीगियों के हाथ में चला गया । यह कहा जा सकता है कि पाकिस्तान बनने के विचार को जोर मिला ।

दूसरा महायुद्ध छिड़ा तो उस समय कांग्रेस ने अपने मंत्रिमंडलों से इस्तीफा दिलवा दिया पर बंगाल में लीगी-सरकार कायम रही । १९४२ के आन्दोलन में बंगाल ने खुलकर भाग लिया । १९४३ में बंगाल में महान् दुर्भिक्ष पड़ा जिस से लाखों आदमी मर गए । यह दुर्भिक्ष मनुष्य कृत इस अर्थ में था कि खाना मौजूद था, फिर भी अनाज की ठीक से ढुलाई न होने से तथा दूसरे कारणों से अकाल पड़ा ।

सुभाष बाबू जमानत पर छूटे थे उनका विश्वास सत्याग्रह से उठ गया था । वे भेष बदल कर अफगानिस्तान के रास्ते जर्मनी पहुँचे और वहां से वे सिंगापुर पहुँचाए गए । वहाँ उन्होंने आजादहिंद फौज का संगठन किया । इसका संगठन उनसे पहले सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस कर रहे थे । सुभाष बाबू के पधारते ही आजाद हिन्द फौज एक स्वतन्त्र संगठन बन गया । आजाद हिन्द फौज की ओर से पूर्व से भारत पर आक्रमण की योजना थी, पर इतने में अंग्रेजों की जीत होने लगी और आजाद हिंद फौज के लोग गिरफ्तार होकर भारत लाए गए । बाद को उन पर जो मुकदमा चला

उसके सिलसिले में ब्रिटिश सरकार को यह अनुभव हुआ कि अब देशी फौज पर भरोसा नहीं रखा जा सकता। इधर जनता तो क्षुब्ध थी ही और १६४२ के आन्दोलन के कारण जनता में क्रान्तिकारी भावना प्रबल हो गई थी। इन्हीं बातों के कारण अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का फैसला कर लिया। पर भारत छोड़ते समय उन्होंने देश को दो हिस्सों में बांट दिया, जिसके फलस्वरूप बंगाल दो टुकड़ों में बँट गया। मुस्लिम प्रधान अंश पूर्वी पाकिस्तान बन गया और हिन्दू प्रधान अंश भारत में रहा।

यद्यपि बंगाल के दो टुकड़े हुए हैं पर उसकी भाषा एक है। पश्चिम-पाकिस्तानियों ने पूर्व-पाकिस्तान पर उर्दू लादनी चाही थी, पर पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने इसका विरोध किया। छात्रगण भाषा आन्दोलन की सबसे अगली कतार में रहे। इसी बारे में प्रदर्शन करते हुए पाँच मुस्लिम युवक शहीद हो गए। बँगला भाषा के इतिहास में ये पांच शहीद अमर हैं। उन्होंने बंगाल को जो कुछ दिया, वह न चंडीदास ने दिया, न रवीन्द्रनाथ ने, न नजरुल ने। उन्हीं की शहादत के बाद उर्दू के साथ-साथ बँगला भी राष्ट्रभाषा मान ली गई।

स्वराज्य के बाद १६५६ में बंगाल राज्य का पुनर्गठन हुआ। इसके अनुसार बंगाल को बिहार का पूर्णिया मिला, जिसकी आबादी २८०००० और क्षेत्रफल ७६० वर्गमील है। इसी प्रकार बंगाल को मानभूम जिले का पुरुलिया सब डिविजन प्राप्त हुआ, पर इस डिविजन का चास और चण्डी थाना बिहार में ही रहा। कुल मिला कर बंगाल को २१४० वर्गमील भूमि और ११००००० के लगभग आबादी प्राप्त हुई। इस प्रकार पुनर्गठन के पहले बंगाल और बिहार को एक प्रान्त बनाने का आन्दोलन चला भी था, पर उसके लिए वातावरण तैयार नहीं था, इसलिए वह प्रस्ताव जहाँ का तहाँ रह गया।

एक था राजकुमार

(बंगाल की एक लोक-कथा)
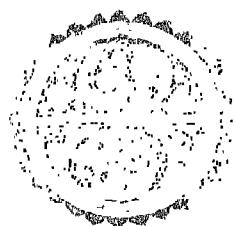
एक राजकुमार, मंत्रिकुमार, वणिककुमार और कोतवालकुमार में बड़ी दोस्ती थी। चारों में से कोई कुछ भी न करता था। बस जब देखो तब घोड़ों पर सवार हो कर इधर-उधर मटरगश्ती किया करते थे। देख-सुन कर राजा, मन्त्री, बनिए और कोतवाल सब नाराज हुए, और उन्होंने यह तय किया कि लड़के खाने बैठें, तो उन्हें राख परोस दी जाय।

मंत्री, वणिक तथा कोतवाल आदि इन तीनों की स्त्रियों ने तो जैसा तय हुआ था, उसके अनुसार राख परोस दी, पर रानी से ऐसा करते नहीं बना। रानी ने सब खाना बाक़ायदा लगाया, केवल थाली के एक कोने में थोड़ी-सी राख रख दी। राजकुमार ने बैठते ही पूछा—"माँ, यह क्या बात है ?"

तब रानी ने रो कर सारी बात बता दी। सुन कर राजकुमार ने माँ के पैर छुए और उठ खड़ा हुआ। वह सीधा वहाँ पर पहुँचा, जहाँ चारों मित्र इकट्ठे हुआ करते थे। सब लोग आ गए तो राजकुमार ने मित्रों से पूछा—"कहो मित्र ! आज तुम लोगों ने कैसा खाना खाया ?"

सब ने बताया कि आज खाने के लिए राख मिली। इस पर राजकुमार ने कहा—"चलो इस देश को छोड़ दें।"

बस चारों मित्र घोड़ों पर चढ़ कर चल दिए। बहुत दूर जाने के बाद एक चौराहा मिला। यह तय हुआ कि चारों चार रास्तों पर जाएँ। कोतवालकुमार

दक्षिण को, वणिककुमार उत्तर को, मंत्रिकुमार पश्चिम और राजकुमार पूर्व की ओर चले। यह तय हुआ कि जब कोई भी लौटे, वह यहीं चौराहे पर बैठा रहे।

दिन भर चारों के घोड़े दौड़े, पर कहीं किसी को कोई शहर, गाँव, बन्दरगाह, यहाँ तक कि मकान भी दिखाई नहीं पड़ा। संन्ध्या समय सब लोग लौट आए और इस नतीजे पर पहुंचे कि वे किसी राक्षस की माया में पड़ गए हैं। यह तय हुआ कि रात भर जाग कर पहरा दिया जाए। पर यह तो बाद की बात थी, अभी कुछ खाने को तो मिलता। वे घोड़े छोड़ कर फलों की तलाश में चले, पर कहीं पर फलों का पता नहीं लगा। चारों तरफ कंकड़, पत्थर और पाकड़िया के पेड़ थे। खोजते-खोजते अचानक एक हिरन का सिर मिल गया। सब लोग बहुत खुश हुए और उसी को पकाने की तैयारी में लग गए। राजकुमार सो गया। और लोग लकड़ियाँ आदि लेने चल दिए।

थोड़ी देर में कोतवालकुमार तलवार से हिरन का सिर काटने गया, तो उसमें से एक भयंकर राक्षसी निकली और वह उसे और उसके घोड़े को खा गई। फिर हिरन का सिर ज्यों का त्यों हो गया। पानी ला कर वणिककुमार ने देखा कि कोतवाल-कुमार लकड़ी तो ले आया, पर कहीं चला गया है। उसने सोचा, तब तक हिरन के सिर को बना रक्खूं। पर उसका भी वही हाल हुआ।

मंत्रिकुमार ने आ कर देखा कि पानी आ गया, लकड़ी आ गई, पर मित्र न मालूम कहाँ गए। वह भी हिरन का सिर काटने गया, तो उसका भी वही हाल हुआ और वह चिल्लाया, बचाओ, बचाओ। राजकुमार ने जग कर देखा कि राक्षसी मंत्रि-कुमार को खा रही है। वह तलवार ले कर लपका। पर आवाज आई, भागो भागो। राजकुमार पहले तो भागा नहीं, पर जब फिर आवाज आई, तो भाग खड़ा हुआ। एक आम के पेड़ के पास जा कर बोला—"यदि तुम सतयुग के वृक्ष हो, तो मुझे अपने तने में ले लो।।"

पेड़ ने फ़ौरन अपना तना खोला और राजकुमार उसमें छिप गया। राक्षसी ने पेड़ से बहुत कुछ कहा कि मेरा शिकार दे दो, पर जब वह नहीं माना, तो वह एक रूपवती कन्या का रूप धर उस पेड़ के नीचे बैठ रोने लगी।

उस देश के राजा शिकार के लिए गए, तो उन्होंने देखा कि एक सुन्दर लड़की पेड़ के नीचे बैठ कर रो रही है। राजा समझा-बुझा कर उसे राजमहल में ले गए। उन्होंने लड़की से शादी कर ली।

अब तो वह राक्षसी रानी बन कर यह सोचने लगी कि राजकुमार को कैसे खाया जाय।

इसके लिए राक्षसी ने ढोंग रचा और सात दिन का बासी भात और सोलह दिन की बासी इमली का पानी पी कर बीमार हो गई। उसने अपने बिस्तर के नीचे पटसन की सूखी छड़ियाँ बिछा लीं और फिर कभी इधर करवट लेती, कभी उधर करवट लेती, तो पटसन की लकड़ियों के टूटने की आवाज होती। राजा ने पूछा—"रानी यह क्या हाल हो रहा है ?"

रानी बोली—"मेरी हड्डियाँ टूट रही हैं।"

राजा को बड़ा अफसोस हुआ। वैद्य बुलाए गए, पर किसी के इलाज से कुछ नहीं हुआ। बीमारी होती, तब इलाज होता। जब इलाज कराते-कराते राजा थक गए, तो रानी बोली—"इन बातों से कुछ नहीं होने का। जिस आम के पेड़ के नीचे मैं बैठी थी, उसी को काट कर मेरे कमरे में उसका धुआँ दिया जाय, तो मैं अच्छी हो सकती हूँ।

राजा के लिए यह बहुत मामूली बात थी। सैकड़ों बढ़ई कुल्हाड़े आदि लेकर फौरन दौड़े। राजकुमार ने जो यह हाल देखा, तो वृक्ष से बोला—हे वृक्ष यदि तुम सतयुग के वृक्ष हो, तो मुझे एक आम में डाल कर तालाब में गिरा दो।

वृक्ष ने ऐसा ही किया, और राजकुमार आम के अन्दर हो कर तालाब में गिरा। फौरन एक बड़ी मछली उसे निगल गई।

रानी के कमरे में आम के पेड़ का धुआँ किया गया, पर वह तो सब जान चुकी थी। बोली—उस तालाब में एक बहुत बड़ी पुरानी मछली है, उसके पेट में एक आम है, मैं उसे खाऊँ, तभी मेरा रोग दूर होगा।

सैंकड़ों मछवाहे जाल ले कर दौड़ पड़े। वह मछली पकड़ी गई, पर आम के भीतर से राजकुमार ने कहा—हे मछली, यदि तुम सतयुग की मछली हो, तो तुम मुझे एक घोंघा बना कर निकाल दो।

मछली ने ऐसा ही किया। इस लिए जब मछली काटी गई, तो उसके पेट में न आम निकला न जामुन। राजा समझे कि अब रानी अच्छी नहीं होगी।

एक गृहस्थ स्त्री नहाने गई थी, तो उसके पैर में एक घोंघा लगा। उस स्त्री ने घोंघे को दूर फेंका, तो वह टूट गया, और उसके अन्दर से राजकुमार प्रगट हो

गया। राजकुमार ने सारी बात बताई, और कहा कि तुमने मेरा प्राण बचाया, इस लिये तुम मेरी संरक्षिका हुई। राजकुमार उसी स्त्री के घर रहने लगा।

रानी को सारी बात मालूम हो गई। उसने कहा—मेरी बीमारी तभी अच्छी होगी जब मेरे पिता के देश से हंसती हुई चम्पा और नाचन लड़की, सुन्दर दांत की चिकनी पट्टी और बारह हाथ ककड़ी का तेरह हाथ बीज मंगवाया जाएगा।

जब यह प्रश्न उठा कि कौन लाएगा, तो रानी ने बताया कि अमुक गृहस्थ के घर में एक लड़का है, वही इन चीजों को ला सकेगा। कुमार को वह चीजें लाने के लिए जाना पड़ा।

राजकुमार चलता गया, चलता गया। वह एक राजधानी में पहुँच गया। पर वहाँ न कोई आदमी था, न आदमजाद। राजमहल में घुसने पर एक राजकुमारी लेटी हुई दिखाई पड़ी। वह सोने की खाट पर पड़ी थी, और चाँदी की खटिया पर उसके पैर थे। उसके सिरहाने एक रुपहली लकड़ी और पैताने सुनहली लकड़ी पड़ी थी। जब कुमार ने बहुत पुकारा, फिर भी वह न जगी, तो कुमार ने सिरहाने की लकड़ी पैताने और पैताने की लकड़ी सिरहाने कर दी। इस पर राजकुमारी जग गई और बोली—आप कौन हैं ? यह राक्षसों की पुरी है। आप फौरन भाग जाएँ।

कुमार ने कहा कि कहाँ भागूँ, तब कुमारी ने कहा—यह राजधानी मेरे पिता की है, पर राक्षसों ने उन्हें खा लिया। मुझे जिन्दा छोड़ा है, पर बाहर जाते समय वे मुझे सुला जाते हैं।

अभी बात हो रही थी कि राक्षस चिल्लाते हुए आते मालूम पड़े। कुमारी ने कहा—आप मुझे सुला दीजिये, और स्वयं जा कर शिव मन्दिर के फूल-पत्तों में छिप जाइए।

एक बुढ़िया राक्षसी ने राजकुमारी को जगाते हुए कहा—मुझे मनुष्य की गंध आ रही।

राजकुमारी बोला—यहाँ मनुष्य कोई नहीं है। मैं हूँ, मुझे खा डालो।

पर बुढ़िया ने ऐसा नहीं किया, वह खुद खा पीकर और कुमारी को खिला पिला कर सो गई। अगले दिन फिर राक्षस राजकुमारी को सुला कर चले गए, तब राजकुमार ने तहखाने से निकल कर राजकुमारी को जगाया और खाने पीने में लग गया।

इस तरह बहुत दिन बीते। तब एक दिन राजकुमार ने कहा, ऐसे कितने दिन

चलेंगे। जब बुढ़िया आए, तो उससे यह पूछो कि राक्षसों की मृत्यु किस बात से होती है।

जब राक्षसी बुढ़िया लौट आई, तो उसके पैर दाबती हुई राजकुमारी बोली—मुझे तो बड़ा भय लगता है कि जब तुम मर जाओगी, तो राक्षस मुझे खा जाएंगे।

इस पर राक्षसी बोली—चल मूर्ख बच्ची, भला मेरी भी मौत कहीं है। हाँ, उस तालाब में एक संगमर्मर का खम्भा है, उसमें एक सात फनवाला सांप रहता है। यदि कोई राजकुमार एक सांस में उस सोने के ताड़ के पेड़ पर चढ़ जाय, और वहां से पत्ता काट कर लाए, और उस सांप को अपने सीने पर रख कर काट डाले, तभी हम राक्षसों की मृत्यु हो सकती है। सो ऐसा न हुआ, न होगा।

राजकुमारी बोली—यह तो बड़ी अच्छी बात है, पर दादी यह बताओ कि अमुक देश की राक्षसी रानी की आयु किस बात में है, और हंसती चम्पा, नाटन लकड़ी, दांत की चिकनी पट्टी और बारह हाथ ककड़ी का तेरह हाथ बीज कैसे और कहां मिल सकता है?

राक्षसी बोली—जिस कमरे में तेरा बाप रहता था, उसी में ये सब चीजें हैं। उस कमरे में एक तोता है, उसी में मेरी लड़की उस रानी का प्राण है।

उस दिन बुढ़िया की बड़ी सेवा हुई। अगले दिन जब राक्षस चले गए, तो राजकुमार ने सारी बात जान ली। जैसा बताया गया था उसने सब बातों को उसी प्रकार से किया। अभी सांप को पकड़ा ही था कि सब राक्षस दौड़ कर आ गए, पर राजकुमार ने फौरन सांप को काट डाला। खून की एक भी बूंद जमीन पर नहीं गिरी। बस, सब राक्षस मर गए। तब राजकुमार ने राजकुमारी से कहा कि चलो अपने देश को चलें।

राजकुमार उस राजा के पास जा कर बोला—महाराज मैं सब चीजें लाया हूं।

सभा बुलाई गई, और यह फैसला हुआ कि रानी सब चीजें स्वयं लेगी। रानी आई। वह तय कर के आई थी कि आज किसी भी दाम पर राजकुमार को खाना है। पर वह अभी सभा में आई ही थी कि राजकुमार ने तोते का सिर काट डाला, और रानी राक्षसी रूप में प्रकट होकर वहीं ढेर हो गई।

राजा ने राजकुमार को बहुत सा धन देना चाहा, पर राजकुमार अपने देश में राजकुमारी को लेकर चला गया। उस के दिन बहुत सुख से बीतने लगे और वह बहुत बड़ा राजा हुआ।

बंगाल की लोक-कला और नृत्य

जब बंगाल की लोक-कला के विषय में यह कहा जा सकता है कि उसके सम्बन्ध में सारे भारत में कुछ न कुछ जानकारी सब पढ़े-लिखे लोगों को हो गई है। इसका कारण है यामिनी राय तथा इस प्रकार के कलाकारों के चित्र, जो लोक-कला के ढंग पर हैं।

चित्र-विद्या : बंगाल की लोक-कलाओं के अन्तर्गत चित्र-विद्या को 'पट' कहा जाता है। इस ढंग के चित्र केवल बंगाल में ही बनते हैं, बल्कि इस ढंग की चित्र-कला बंगाल से प्रभावित उड़ीसा तथा आसाम में भी पाई जाती है।

कालीघाट के पट बनाने वाले या पटुवे रंगों की कारीगरी में बड़े दक्ष हैं। उनके रंग सजीव तथा ताजे होते हैं। उनके डिजाइन भी सरल होते हैं जिनमें देवी-देवताओं तथा पशु-पक्षियों का चित्रण होता है।

पूर्वी बंगाल के गाजी के पट भी प्रसिद्ध हैं, पर रंग की दृष्टि से उनमें कोई खास भेद नहीं है।

मिट्टी के घड़ों तथा घड़ों के ढकनों पर चित्रकारी भी लोक-कला का एक अंग है। कूची का काम तिनकों तथा ऐसी ही दूसरी चीजों से लिया जाता है।

मूर्तियाँ तथा गुड़ियाँ : बंगाल के देवी-देवताओं की मिट्टी की बनी मूर्तियों से सभी परिचित हैं क्योंकि जहाँ भी दस-बीस बंगाली रहते हैं, वहाँ वे जरूर दुर्गापूजा

या सरस्वतीपूजा करते हैं। इन देवियों के अतिरिक्त कालिका, शिव, राधा-कृष्ण, बाल-गोपाल आदि की मूर्तियाँ भी बनाई जाती हैं।

मिट्टी की गुड़ियों की एक किस्म बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित है। एक गुड़िया का विचित्र नाम भी है। उसे 'बेनेपुतल' कहा जाता है।

मिट्टी के अलावा लकड़ी की गुड़िया भी बनती हैं।

हाथीदांत तथा शंख का काम : मुर्शिदाबाद तथा कलकत्ता में हाथीदांत की छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनती हैं। देवताओं की मूर्तियाँ अधिक बनती हैं। इसके अलावा पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ भी सजावट की दृष्टि से बनाई जाती हैं। महीन चूड़ियाँ, सिंदूर रखने की डिब्बियाँ भी हाथीदांत से बनाई जाती हैं।

विष्णुपुर तथा ढाका की शंख की महीन तथा चित्र-विचित्र चूड़ियाँ बड़ी मशहूर हैं। बंगाल की स्त्रियाँ इन्हें बहुत पसन्द करती हैं और इन्हें चाव से धारण करती हैं। शादी-ब्याह तथा शुभ कार्यों में इनका व्यवहार अवश्य होता है।

शोला की शिल्प के लिए भी बंगाल के कारीगर मशहूर हैं। देवी मूर्तियों को सजाने के लिए शोले की वस्तुएँ काम में आती हैं। इसके अलावा शोले से जो सब से बढ़िया चीज बनती है, वह है ब्याह-शादियों के अवसर पर वर-वधू के लिए बनाए गए टोपर या मुकुट। बिना रंग के सफेद मुकुट सचमुच ही असाधारण शिल्प के परिचायक हैं।

सोने-चाँदी का काम : ढाका तथा कलकत्ता में सोने-चाँदी की बहुत महीन तथा नाजुक कारीगरी होती है। कई किस्म के जेवर, फूल-पत्ते तथा टिकने बनाए जाते हैं जो बिलकुल पारदर्शक होते हैं।

वस्त्र शिल्प : बंगाल की लोक-कला में वस्त्रों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। ढाके की मलमल की तो कहानियाँ ही बन चुकी हैं।

रेशमी वस्त्रों में विष्णुपुर के रेशम के महीन तथा मोटे कपड़े प्रसिद्ध हैं। महीन वस्त्र का नक्शा तथा काम करघे पर बुनाई के समय ही किया जाता है।

मुर्शिदाबाद के छपे रेशमी कपड़े सारे संसार में आदर के साथ पहने जाते हैं।

मुर्शिदाबाद के एक विशेष रेशमी वस्त्र को 'गरद' कहा जाता है, जिसका रंग स्वाभाविक होता है।

रेशमी वस्त्र के अलावा बंगाल की स्त्रियाँ करघे की साड़ियाँ भी बहुत पसन्द करती हैं। बंगाल के रईस पुरुष और स्त्रियाँ शायद शान्तिपुर, ढंगाई, चन्द्रकोना, फराशडांगा के करघों की धोतियाँ और साड़ियाँ चाव से पहनती है।

चटाइयाँ : मेदिनीपुर की महीन चटाइयाँ तथा कुमिल्ला, नोआखाली और सिलहट की शीतलपाटियाँ प्रसिद्ध हैं। बंगाल की स्त्रियों ने कांथा या कंथनियों की सिलाई को एक कला के दर्जे तक पहुँचा दिया।

बंगाल की आल्पना कला भी बहुत सुन्दर है। जमीन पर उँगलियों से तथा रुई से और दीवारों, पटरों पर तिनकों के सहारे चित्र बनाए जाते हैं इसमें चावल का पीठी का सफेदा काम में लाया जाता है।

बंगाल के नृत्य : बंगाल के लोक-गीतों का खजाना भरा-पूरा है——उसी तरह उस के पास लोकनृत्यों की भी बड़ी पुरानी देन है। पर सम्बन्ध में पढ़े-लिखे लोगों को कुछ अधिक मालूम नहीं था——परन्तु व्रताचारी आन्दोलन चलाने वाले श्री जी.एस. दत्त आई.सी.एस. ने इस दिशा में बहुत काम किया।

बंगाल के आज के नृत्यों में मैमनसिंह इलाके के नृत्य ही विशेष हैं। यह नृत्य अवसर चैत्र संक्रान्ति के अवसर पर नकली चेहरे लगा कर किए जाते हैं। महादेव नृत्य में रूप बनाने के लिए शरीर पर राख मली जाती है और रुद्राक्ष के मनकों की मोटी माला भी नर्तक गले में डालता है। एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में शंख ले कर नृत्य आरम्भ करता है।

काली का रूप धर के दूसरा नर्तक मंच पर आता है। शिवजी दण्डवत् लेट जाते हैं तो काली माता उन के दो-तीन चक्कर लगा कर उन की छाती पर पांव रख देती हैं। उस के बाद काली नृत्य शुरू होता है और महादेव उठ कर चले जाते हैं।

मैमनसिंह जिले का एक और नृत्य है जिस का नाम है बूढ़ा-बूढ़ी। इस में बुढ़ापे का मजाक रहता है।

राधा-कृष्ण सम्बन्धी नृत्यों का कम महत्व नहीं है। बंगाल के अधिक नृत्य धार्मिक किस्म के हैं। इन नृत्यों का विवाह आदि अवसरों पर प्रदर्शन होता था। दुर्गा-पूजा और डोल-जात्रा आदि मौकों पर भी यही नृत्य होते रहे हैं।

बंगाल में 'जात्रा' नाम से एक नाटक-सा हुआ करता था—उसे नृत्य की बजाय नाटक या ड्रामा भी कह सकते हैं। पहले रामलीला की तरह जात्राएँ भी कृष्णलीला आदि के लिए मशहूर रही हैं। इन जात्रा नृत्यों का आरम्भ महाप्रभु चैतन्य ने किया—जब कि वे कृष्ण की भक्ति में लीन हो कर नाचते-गाते थे। इसी तरह कीर्तन-नृत्य भी बड़ा पुराना है।

वैसे आधुनिक काल में मनीपुरी नृत्य को नया रूप देने में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बड़ा भारी योग है। शान्तिनिकेतन उस परम्परा को जारी रखे है।